

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये



वर्ष
८९

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
७

भगवान् श्रीकृष्ण



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



पंचदेव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥

वर्ष
८९

गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, जुलाई २०१५ ई०

संख्या
७

पूर्ण संख्या १०६४

एक ही परम प्रभु पाँच उपास्यरूपोंमें

एक परम प्रभु चिदानन्दधन परम तत्त्व हैं सर्वाधार।
सर्वातीत, सर्वगत वे ही अखिल विश्वमय रूप अपार॥
हरि, हर, भानु, शक्ति, गणपति हैं इनके पाँच स्वरूप उदार।
मान उपास्य उन्हें भजते जन भक्त स्वरुचि-श्रद्धा-अनुसार॥

एक 'उपास्य' देव ही करते लीला विविध अनन्त प्रकार।
पूजे जाते वे विभिन्न रूपोंमें निज-निज रुचि-अनुसार॥
सर्वोपरि—कर्तव्य—धर्म है यही एक, जीवनका सार।
करें स्वकर्मोंसे उपासना उनकी ही, रख शुद्ध विचार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, जुलाई २०१५ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- एक ही परम प्रभु पाँच उपास्यरूपोंमें	३	१३- गौकी स्तुति [कविता]	
२- कल्याण	५	(श्रीसतीशचन्द्रजी चौरसिया 'सरस')	३०
३- भगवान्‌के विशुद्ध प्रेमका उपाय		१४- नसीबकी चाभी कर्मके हाथ (डॉ० गो० दा० फेगडे)	३१
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६	१५- मानसमन्दिर का स्वर्णकलश	
४- छोटा-बड़ा कौन है ? (महात्मा पं० श्रीशम्भुदयालजी शर्मा) ..	९	(डॉ० श्रीरामस्वरूपजी ब्रजपुरिया, विद्यावाचस्पति)	३४
५- 'किशोरी अब आन परों तोरे द्वार' [कविता]		१६- द्रष्टा बनिये (सुश्री कृष्णा कुमारीजी)	३६
(श्रीबेताबजी केवलारवी)	१०	१७- शिवजी भैया [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)	
६- प्रेमभक्तिमें भगवान्‌ और भक्तका सम्बन्ध		[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	३८
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ..	११	१८- भारतीय गोवंशकी विशेषताएँ (डॉ० श्रीअशोकजी काले)	
७- गाढ़ी कमाई (श्रीकेशवनारायणजी अग्रवाल)	१४	[प्रेषक—श्रीरामदयालजी पोद्दार]	४१
८- साधकोंके प्रति—		१९- संत उद्बोधन	
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१९	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	४२
९- 'राम नाम नरकेसरी'—तात्त्विक भावविमर्श		२०- साधनोपयोगी पत्र	४३
(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	२३	२१- व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रतपर्व]	४५
१०- बागकी रक्षाका अधिकार है, फल खानेका नहीं	२५	२२- कृपानुभूति	४६
११- 'मन क्रम बचन करेहु सेवकाई' (श्रीबालकृष्णजी कुमावत) ..	२६	२३- पढ़ो, समझो और करो	४७
१२- 'सत संगति दुर्लभ संसार' (वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)	२९	२४- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवान्‌ श्रीकृष्ण	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- पंचदेव	(")	मुख-पृष्ठ
३- माता सुमित्रा और लक्ष्मण	(इकरंगा)	२६
४- शिवजीरामसे क्षमा माँगते रामदयाल	(")	४०
५- जर्सी गाय	(")	४१
६- हरियाना गाय	(")	४१

एकवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ २००

सजिल्द ₹ २२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
सजिल्द शुल्क }

वार्षिक US\$ 45 (₹ 2700)
पंचवर्षीय US\$ 225 (₹ 13500)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ १०००

सजिल्द ₹ ११००

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु www.gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

भगवान्‌के विशुद्ध प्रेमका उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क ६ पृ०-सं० ९ से आगे]

प्रेमी प्रेमास्पदके बिना बहुत समयतक नहीं जी सकता। हम देखते हैं कि जैसे भरतका प्रेम है, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी प्रेम भगवान्‌में कम नहीं था। जब श्रीराम लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि 'तुम घरपर रहो, क्योंकि भरत और शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए हैं और हम वनमें चले जायँगे तो पिताजी शोकके कारण दुखी हो जायँगे। माता-पिताकी सेवा करना अपना धर्म है, नीति है, इसे खयालमें रख करके तुम्हें घरमें ही रहना चाहिये।' इसपर लक्ष्मणजी कहते हैं कि 'प्रभो! धर्म और नीतिका उपदेश तो उसे देना चाहिये, जिसे संसारमें विभूति चाहिये, कीर्ति चाहिये। मैं तो आपका प्रेम-पालित हूँ, आप मुझे अलग न करें। यदि आप मुझे अलग कर देंगे तो इसमें मेरा क्या वश है, क्या उपाय है।' भगवान्‌ घर रहनेके लिये आग्रह करते हैं, इसपर लक्ष्मण कहते हैं—

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराई ॥

हे नाथ! आपने 'तुम घरपर ही रहो'—यह जो बात कही, वह ठीक कही—उचित बात कही; क्योंकि मैं यहाँ रहनेके लायक ही हूँ। कारण कि यदि मेरा आपमें प्रेम होता तो आप रहनेके लिये कभी नहीं कहते। इसलिये आपने उचित बात कही। मैं प्रेमका पात्र नहीं हूँ। इस विषयमें मेरी कायरता ही मुझे प्रतीत होती है। कायरता क्या? कायरता यह कि मुझमें ऐसी शूरवीरता नहीं है कि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो आपके वियोगमें, विरहमें व्याकुल होकर मैं मर जाऊँगा। आपके प्रति मुझमें इतना प्रेम नहीं है कि आपके वियोगको मैं बर्दाश्त न कर सकूँ। आपके वियोगमें मैं प्राण खो बैटूँ, ऐसी मुझे उम्मीद नहीं है। यदि वास्तवमें मेरा आपमें इतना प्रेम होता कि आपके वियोगमें मेरे प्राण नहीं रहेंगे तो आप मुझे छोड़कर कभी नहीं जाते। इसलिये इस

विषयमें मैं कायर हूँ, आपका कोई दोष नहीं है। मेरेमें कायरता है, मैं पात्र नहीं हूँ। भगवान्‌ने सोचा कि यह तो प्राण खो बैठेगा, इसलिये इसे साथमें ही ले चलो। रामने कहा—'भैया, तुम हमारे साथ चलो, लेकिन माता सुमित्राका हुक्म ले आओ।' माता सुमित्रा भगवान्‌में बहुत ही प्रेम रखती थीं। जब उन्होंने सोचा कि मेरा लड़का भगवान्‌की सेवाके लिये उनके साथमें जाता है तो हमारा अहोभाग्य है। मैं पुत्रवती हूँ ऐसा समझती हूँ; क्योंकि मेरा पुत्र भगवान्‌का भक्त है, मैं वास्तवमें पुत्रवती हूँ—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥

पुत्रवती वही युवती है, जिसका पुत्र भगवान्‌ रामका भक्त हो, अन्यथा उसका पुत्र जनना व्यर्थ ही है, इससे तो बाँझ ही भली—'**नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी**।' कितना उच्च भाव है। इतना ही नहीं सुमित्रा अपने पुत्रसे कहती हैं—

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥

'हे तात! तुम्हारे ही भाग्यसे राम वन जा रहे हैं। रामके वन जानेमें दूसरा और कोई कारण नहीं है।' कैकेयी और कुबरी मंथरा—ये तो निमित्तमात्र हैं। सच्ची बात तो यह है कि यहाँ तो सेवा करनेवाले बहुत थे और वनमें तू अकेला ही है। जब सीता और राम वन जा रहे हैं तो बेटा, तेरा यहाँ क्या काम है? मेरे समान सीताको और दशरथके समान रामको समझना चाहिये। मेरा तुमसे यही कहना है कि तुम सीता और रामकी सेवा करना। मेरा यही उपदेश है और यही मेरा आदेश है। कितना सुन्दर उपदेश दिया है।

सुमित्राका और लक्ष्मणका भगवान्‌ राममें प्रेम था, सीताका तो प्रेम था ही। सीताको भगवान्‌ राम उपदेश देते हैं कि हे सीता! तुम हठ मत करो, हठकी नताजी

स्वार्थका त्याग करके तो केवल भगवान् ही प्रेम करते हैं या भगवद्भक्त । इन दोको छोड़कर दुनियामें तीसरा कोई बिना स्वार्थके प्रीति करनेवाला नहीं है । [समाप्त]

छोटा-बड़ा कौन है ?

(महात्मा पं० श्रीशम्भुदयालजी शर्मा)

यह मानवदेहधारी जीव अपने विचारोंका अभिमानि होकर अपने-आपको महान् समझे हुए है। अन्य सांसारिक छोटी-बड़ी विभूतियोंका हमें क्या पता कि वे अपने मनमें अपने-आपको क्या समझे बैठी हैं। हमें क्या पता कि एक चींटी अपने मनमें क्या अभिमान रखती है। जबकि यह मनुष्य ही मनुष्यजातिमें अपनी बुद्धि-विवेचनाके द्वारा यह पता न लगा सका कि कौन छोटा और कौन बड़ा है, तो हमें विश्वकी किसी भी वस्तुको छोटा या बड़ा कहनेका क्या अधिकार है ? जबकि यह सब प्रपञ्च मायामय ही है तो यह सब सामग्री एक ही भावकी हुई। यह जो कुछ नाम-रूपात्मक जगत् दृष्टिमें आता है, इसमें पदार्थ तो सब एक समान ही हैं। मिट्टीका बना हुआ राजा खिलौना, मिट्टीके सेवक खिलौनेसे अभिमान तो करता है, परंतु उसे यह नहीं मालूम कि तेरी और उसकी मिट्टीमें क्या अन्तर है।

यदि गन्ना अपने माधुर्यगुणसे अपने-आपको महान् समझता है तो गिलोय भी अपने गुणोंमें कोई सानी नहीं रखती। यदि ह्वेल मछली अपने-आपको मशीन समझकर अभिमान करती है तो एक छोटा कीट भी अपने-आपको एक सूक्ष्म पुर्जा समझकर उसे ठोस बतलाता है। यदि मनुष्य विविध विद्याओंमें पारंगत हुआ अभिमान करता है तो चींटी भी अपनेमें विचित्र घ्राणशक्तिका अनुभव करके मन-ही-मन फूल सकती है।

तात्पर्य यह कि वही एक परमात्मा अपनी विभूतियोंमें आप ही बैठा हुआ अपनेको सबसे बड़ा कह रहा है। वास्तवमें न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। इन विविध वर्णकी हंडियोंमें वही एक परमात्मा उफन रहा है।

एक ही प्रकाश भिन्न-भिन्न प्रकारके शीशोंमेंसे विविध रंगका होकर भास रहा है। वह ईश्वर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुके भी उतना ही निकट है, जितना एक बृहद्-से-बृहद् विभूतिके। वह सबके समीप है और सबसे दूर है।

जो नगमा सोजमें है वही साजमें है।

फर्क नजदीको दूरकी आवाजमें है॥

उस विभुकी प्रत्येक स्वल्प और महान् विभूति अपने रंग-रूपमें परिपक्व होकर जहाँसे निकली है, उसी अपने उपादान कारण ईश्वरमें विलीन हो जाती है। प्रत्येक विभूतिका गुण, आकार, प्रकार, धर्म और समय जितना-जैसा नियत है, उतनी ही सीमामें वह अपनी थिरक दिखलाकर उसी महापटकी ओटमें लय हो जाती है। यह जो मनुष्य 'धर्म-धर्म' कहता-सुनता है, उसी ईश्वरकी वाणी है। आप ही अपनेसे बने हुए आवरणसे आच्छादित हुआ, अपनी महत्ताका ध्यान धरता हुआ इस आवरणसे निकल जाता है। विश्वकी प्रत्येक विभूति अपने-अपने ठेकेमें अपने निर्मल और सूक्ष्म स्वरूपकी ओर अपना-अपना आलाप अलाप रही है।

क्योंकि वह आप ही सब विभूतियोंमें विराजमान है। इसलिये कोई भी एक विभूति दूसरी विभूतिको अपनी ऐंटसे नहीं गाँठती है। दो समानके स्वत्वाधिकारियोंमें छोटा-बड़ा कौन ?

एक राजाके दो पुत्र हों और उन दोनों पुत्रोंको पृथक्-पृथक् यह ज्ञान हो कि वही एक राज्याधिकारी है, तो वे दोनों परस्पर राज्याभिमानि होकर एक-दूसरेको तिरस्कृत करते हैं। इसी प्रकार चींटीसे लेकर ब्रह्मातककी दशा है। सबमें एक ही सत्ता है। चींटी यदि ब्रह्माको आँख बताती है तो वह क्या छोटे बापकी बेटी है ? उसमें भी तो वही ऐंट रहा है जो ब्रह्मामें है।

जब वह आत्मा अपने सूक्ष्म और निर्मल स्वरूपमें निकलकर खड़ा होता है तो सब विभूतियोंमें वह आप-ही-आप दृष्टि आता है। उसको यह समस्त संसार (जड-चेतन) यह और वह, मैं और तू, हाँ और नहीं, अपनेहीसे उत्पन्न हुआ दृष्टि आता है। कोई भी मनुष्य दूसरेकी बातोंको सुन-सुनाकर इस माया-जालसे नहीं निकल सकता। यह दूसरोंका कहना-सुनना आत्माका उस व्यक्तित्वके भीतर अपना मायामें बिखरा हुआ पन है। कोई भी पुरुष अपने संकल्पसे अपने आत्मा (ईश्वर)-को पानेके लिये उसमें तत्पर हुआ, उसका

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रेमी बनकर उसे पा लेता है।

कठोपनिषद्में आया है—

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः

शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्वुः ।

आश्चर्योवक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-

श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥

(कठ० १।२।७)

अर्थात् बहुतोंको तो इस आत्माके विषयमें श्रवण ही नहीं प्राप्त होता और बहुत-से सुननेपर भी इसे नहीं जानते। इस आत्मतत्त्वका वक्ता भी आश्चर्यरूप है और इसको प्राप्त करनेवाला श्रोता भी कोई कुशल पुरुष ही है। फिर इस तत्त्वका ज्ञाता (श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ कुशल आचार्यद्वारा उपदेश किया हुआ) भी आश्चर्य-स्वरूप है। अर्थात् मिलना और पहचानना दोनों ही महान् दुर्लभ हैं।

भगवती श्रुति कहती है कि इस आत्मतत्त्वकी प्राप्ति महान् दुर्लभ है साथ ही बहुत सुगम है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधया न बहना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूःस्वाम् ॥

(कठ० १।२।२३)

अर्थात् यह आत्मा न तो वेदादिके अध्ययनसे प्राप्त हो सकता है, न धारणाशक्तिसे और न अनेक शास्त्रोंके सुननेसे ही। (तो इस आत्माको कौन जान सकता है?) जो इसका वरण करता है—इसे यथार्थमें चाहता है। उसी प्रेमीके प्रति यह अपने स्वरूप-तत्त्वको प्रकट कर देता है।

क्योंकि यह आत्मा जिस प्रकार, जिन कारणोंसे मायामें लिप्त हुआ है, उसी पथसे रस लेता हुआ, सरल विधिसे अपने-आपमें आ स्थित होता है। जैसे—वृक्षका बीज, वृक्ष, फल और फूल होकर फिर बीज हो जाता है, इसी प्रकार यह मानवी देह वृक्षरूप है। इसका बीज वही आत्मतत्त्व है। जबतक आत्मा अपने भावको प्राप्त न होगा, तबतक यह शरीररूपी वृक्षमें अंकुरित होता ही रहेगा।

जैसे वृक्ष तो भूमिसे रस खींचते हैं, अमरबेल धरतीके आधार बिना, केवल वृक्षपरसे ही रस खींचती है। इसी प्रकार ये जीव-जन्तु चलते-फिरते हुए ब्रह्माण्डसे अपना रस लेते रहते हैं। विविध जीवोंके रूप-गुण उनके अपने-अपने संकल्पोंके आधारपर हैं। मुख्यतः अपने संकल्पको ही शुद्ध और सबल बनाना है। यह छोटा-बड़ा सब संकल्पमात्र ही है अर्थात् संकल्प ही छोटा और बड़ा है।

‘किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार’

(श्रीबेताबजी केवलारवी)

कर अभिमान विषय संग लपटो, मैं अति अधम गँवार।

किशोरी अब आन परैं तोरे द्वार॥

धन, बल, पायो मैं बौरायो
झूठे जग से प्रीत लगायो
काम, क्रोध बसे नित मन मोरे
सनियो करुन पकार।

किशोरी अब आन परीं तोरे द्वार॥
इते उते भटको लख चौरासी
छूटी न जनम जनम की फांसी
भटक भटक के हार गयो मैं
लीजो मोहि उबार।

पूजा अरु मैं भजन न जानूँ
हौं अति पतित का साधन जानूँ
नंद को लाल-अराधत तुम्हरे
चरन कमल सख सार।

किशोरी अब आन परीं तोरे द्वार ॥
 करो किरपा मोपे भानु किशोरी
 अब नहीं जाऊँ सरन तजि तोरी
 लगी बेताब लगन चरनन की
 सकल जगत आधार ।

प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्का वास्तविक स्वरूप कैसा है—इस बातको भगवान् ही जानते हैं या किसी अंशमें वे जानते हैं, जिनको भगवान् जनाना चाहते हैं। आजतक जगत्में कोई भी यह नहीं कह सका कि भगवान् ऐसे ही हैं, न कोई कह सकता है और न कह सकेगा। यदि कोई ऐसा कहनेका साहस करता है तो वह या तो भोला है, या आग्रही अथवा मिथ्यावादी है। ऐसा होनेपर भी भगवान्के जितने वर्णन जगत्में हुए हैं, वे अपने-अपने स्थानमें सभी सच्चे हैं; क्योंकि महान् परमात्मामें सभीका अन्तर्भाव है, जैसे अनन्त आकाशमें सभी मठाकाश, घटाकाश समाते हैं। किसी गाँवमें होनेवाली घटनाको लेकर हम कहें कि जगत्में ऐसा होता है तो ऐसा कहना मिथ्या नहीं है; क्योंकि गाँव जगत्में ही है, अतएव वह जगत् ही है, परंतु यह बात नहीं कि जगत् वह गाँव ही है। फिर जगत्का तो वर्णन हो भी सकता है; क्योंकि वह प्राकृतिक, ससीम और सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा आकलन करनेयोग्य है, परंतु अप्राकृतिक, असीम, अनन्त, अपार, अकल, अलौकिक परमात्माका वर्णन तो हो ही नहीं सकता, इसीलिये वेद उन्हें 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाते हैं। निर्गुण अक्षरब्रह्म, विकारशील और जड अपरा प्रकृतिमें स्थित निर्विकार परा प्रकृतिरूप जीवात्मा, अपरा प्रकृति और उसके विकारसे उत्पन्न उत्पत्ति और विनाश धर्मवाले सब पदार्थ, भूतोंका उद्भव और अभ्युदय करनेवाला विसर्गरूप कर्म, व्यक्त जगत्का अभिमानी सूत्रात्मा अधिदैव और इस शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित विष्णुरूप अधियज्ञ—ये सब उस नित्य निर्विकार सच्चिदानन्दघन भगवान्के विशेष भाव हैं या उसके आंशिक प्रकाश हैं। अवश्य ही स्वभावसे ही पूर्ण होनेके कारण आंशिक प्रकाश होनेपर भी भगवद्रूपमें सभी पूर्ण हैं। ऐसे सबमें स्थित, सर्वनियन्ता, सर्वाधार,

सबको सत्ता और शक्ति देनेवाले, सबके अद्वितीय कारण, सबसे परे और सर्वमय भगवान्का वर्णन कौन कर सकता है ?

भगवान्ने गीतामें कहा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।

भूतभृन् च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(१।४-५)

‘मुझ अव्यक्तमूर्तिके द्वारा यह सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, सब भूत मुझमें हैं, परंतु मैं उनमें नहीं हूँ, वे सब भूत भी मुझमें नहीं हैं, मेरा यह ऐश्वरयोग देखो कि सम्पूर्ण भूतोंका उत्पन्न और धारण-पोषण करनेवाला होकर भी मैं स्वरूपतः उन भूतोंमें स्थित नहीं हूँ।’

भगवान्के इस कथनमें परस्पर विरोधी बातें प्रतीत होती हैं, ‘मैं सबमें हूँ और किसीमें नहीं हूँ, सब मुझमें हैं और कोई भी मुझमें नहीं है।’ इस कथनका कोई अर्थ सहज ही समझमें नहीं आता। इसीलिये ‘परमार्थ’ और ‘व्यवहार’ का भेद करके इसकी व्याख्या की जाती है, परंतु यही तो भगवान्का ‘ऐश्वरयोग’ है। हमारी विषयविमोहित जडबुद्धि इसे कैसे जान सकती है ? हमारे लिये जो असम्भव है, भगवान्के लिये वह सब कुछ सम्भव है। भगवान्में सब विरोधोंका समन्वय है। इसीलिये तो भगवान्का किसी भी प्रकारसे किया हुआ वर्णन भगवान्के लिये सत्यरूपसे लागू होता है।

भगवान् निर्गुण भी हैं, सगुण भी, निराकार भी हैं, साकार भी। वे निष्क्रिय, निर्विशेष, निर्लिप्त और निराधार होते हुए ही सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाले, सविशेष, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं। सांख्योक्त परस्पर

एक बात और है—ज्ञानके साधनमें भगवान् निर्गुण, निराकार, निरंजन, परम अज्ञेयतत्त्व हैं और ज्ञानयुक्त कर्ममें भगवान् सर्वैश्वर्यसम्पन्न, सर्वगुणाधार, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर, सृष्टिकर्ता, पालन और संहारकर्ता, नियन्त्रणकर्ता

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रभु हैं, परंतु भक्तिमें भगवान् ये सब होते हुए ही भक्तके निजजन हैं। भक्ति विश्वातीत और गुणातीत तथा विश्वमय और सर्वगुणमय परमात्माका अवतरण कराकर, उन्हें नीचे उतारकर भक्तके साथ आत्मीयताके अत्यन्त मधुर बन्धनमें बाँध देती है। भक्तिका साधक—प्रेमी भक्त भगवान्को केवल सच्चिदानन्दघन ब्रह्म या सर्वलोक महेश्वर ऐश्वर्यमय स्वामी ही नहीं जानता, वह उन्हें अपने परम पिता, स्नेहमयी जननी, प्राणोपम सुहृद्, प्यारे सखा, प्राणेश्वर पति, प्रेममयी प्राणेश्वरी, जीवनाधार पुत्र आदि प्राणों-के-प्राण और जीवनों-के-जीवन परम आत्मीयरूपमें प्राप्त करता है। भगवान्के दिव्य स्नेह, अलौकिक प्रेम, अनुपमेय अनुग्रह, परम सुहृदता, अनिर्वचनीय दिव्य नित्य सौन्दर्य और नित्य नवीन माधुर्यका साक्षात्कार और उपभोग भक्तिके द्वारा ही किया जा सकता है, निरे ज्ञान और कर्मके द्वारा नहीं। जिनमें भक्ति नहीं है, उनकी तो कल्पनामें भी यह बात नहीं आ सकती कि भगवान् हमारे पिता-पुत्र, मित्र-बन्धु और जननी-पत्नी भी बन सकते हैं। इसी प्रेमरूपा भक्तिके प्रभावसे भगवान्के दिव्य अवतार होते हैं, इसीके प्रतापसे भक्त अपने भगवान्की दिव्य लीलाओंका आस्वादन करता है और इसीके कारण भगवान्को जगत्के सामने अपना महत्त्व छिपाकर परम गोपनीय भावसे भक्तके सामने अपने परम तत्त्वका अपने ही श्रीमुखसे प्रकाश करना पड़ता है। तर्कशील अभक्तोंके लिये यह तत्त्व सर्वथा गुप्त ही रहता है।

भगवान्‌का अपने प्रेमी भक्तोंके साथ बिलकुल खुला व्यवहार होता है; क्योंकि वहाँ योगमायाका आवरण हटाकर ही लीला करनी पड़ती है। उनके सामने सभी तत्त्वोंका प्रकाश हो जाता है। निर्गुण-निराकार दोनों ही रूपोंका परम रहस्य भगवान्‌ खोल देते हैं। इसीलिये भगवान्‌ने भक्तिकी इतनी महिमा गायी है और इसीलिये परम चतुर ऋषि-मुनि भी भक्तिके लिये लालायित रहते हैं।

भगवान् इतना ही नहीं करते, वे स्वयं भक्तका योगक्षेम वहन करते हैं और उसके साथ खेलते हैं, खाते हैं, सोते हैं तथा प्रेमालाप करते हैं। कभी वे पुत्र बनकर गोदमें खेलते हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।

सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥

कभी राधाजीके साथ झूला झूलते हैं—

झूलत नागरि नागर लाल ।

मंद मंद सब सखी झुलावति गावति गीत रसाल ॥

कभी माता-पिताकी वन्दना और उसकी सेवा करते हैं।

प्रातःकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

आयसु मागि करहिं पुर काजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ॥

कहीं मित्रोंके साथ खेलते हैं, कहीं प्रियाके साथ प्रेमालाप करते हैं, कहीं भक्तके लिये रोते हैं। कहीं भक्तकी सेवा करते हैं, कहीं भक्तकी बड़ाई करते हैं, कहीं भक्तके शत्रुओंको अपना शत्रु बतलाते हैं, कहीं भक्तोंकी स्तुति सुनते हैं और कहीं भक्तोंको ज्ञान देते हैं। यह आनन्द भक्त और भगवान्में ही होता है। भक्त और भगवान्में न मालूम क्या-क्या रसकी बातें होती हैं, न मालूम कैसे-कैसे रहस्य खुलते हैं और न मालूम वे भक्तको कब किस परम दुर्लभ दिव्य लोकमें ले जाकर वहाँका आनन्द अनुभव कराते हैं। वे उसके हो जाते हैं और उसको अपना बना लेते हैं। उसके हृदयमें आप बसते हैं और उसको अपने हृदयमें बसा लेते हैं। सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान, सम्पूर्ण आत्मानुभूति, सम्पूर्ण एकात्मबोध सब यहाँ दिव्य प्रेमके रूपमें परिणत हो जाते हैं और मुक्ति ? मुक्ति तो ऐसे भक्तकी सेवा करनेके लिये पीछे-पीछे फिरती है, उसके चरणोंमें लोटती है—

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा

विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥

‘जिसकी श्रीमुकुन्दके चरणोंमें परमानन्दरूपा भक्ति होती है, मोक्षसाम्राज्यश्री उसके चरणोंमें लोटती है।’

गाढी कमाई

(श्रीकेशवनारायणजी अग्रवाल)

पुरानी बात है—उस समय भारतवर्ष धन-धान्यसे पूरित था। सर्वत्र दूधकी नदियाँ बहती थीं—‘गरीबी’ और ‘बेरोजगारी’ शब्द कोषमें ही पाये जाते थे। पास-पड़ोसके सभी देश सभ्यता तथा संस्कृतिमें उससे पिछड़े हुए थे। वे उसे कला-कौशलका भण्डार समझते थे और उससे विभिन्न कलाओंकी शिक्षा प्राप्त करनेके हेतु अपने नवयुवकोंको भेजते थे। धनोपार्जनके हेतु भी दूर-पाससे लोग आते रहते—भारत किसीको विमुख न लौटाता था।

पश्चिमी सीमाप्रान्तके पड़ोसी देशके चार किसानोंने भारतमें अपना भाग्य आजमानेका निश्चय किया। उनके गाँवसे गुजरनेवाले राहगीर भारतकी समृद्धिकी गाथाएँ नित्य सुनाया करते थे और वे चारों मित्र थोड़े परिश्रमसे बहुत धन जोड़नेके इस प्रलोभनको बहुत कालतक न रोक सके और एक दिन वे चारों चल पड़े।

सीमाप्रान्तके निकटवर्ती पंचनद देशमें अपना कार्यक्षेत्र बनानेकी उन लोगोंने ठानी। पच्चीस दिनकी यात्रा पूरी करके वे एक वाणिज्य-व्यापारके केन्द्रमें पहुँचे, जहाँ चतुर्दिक् चहल-पहलसे जनसमुदाय समुद्रकी लहरोंकी भाँति हिलोरे लिया करता था। पहाड़ी देशके निवासी स्वभावतः मेहनती होते हैं—शीघ्र ही उन्हें अपनी रुचिके अनुकूल व्यवसाय मिल गया।

पहला मित्र चतुर और विवेकपूर्ण था। वह वस्तुका मूल्य आँकनेमें प्रवीण था। उसने एक सर्राफके यहाँ नौकरी की। मालिकके यहाँ कोठे-के-कोठे सोनेकी सिलोंसे भरे थे। उन्हीं सिलोंको नित्य निकालना, रखना, निहाईपर रखकर काटना, कसौटीपर कसना, यही काम उसे सिखाया गया और वह शीघ्र अपने काममें प्रवीण हो गया।

दूसरा मित्र एक रेजगारी या खैरीजके बेचनेवालेके
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dh>
यहाँ जा पहुँचा। चमकत हुए नये ताबिक पेशका

चमक और झंकारसे उसकी आँखें और कान मुग्ध हो गये और वह उसीके यहाँ नौकर हो गया। उसके मालिककी दूकान नगरके प्रधान देवालयके समीप थी। वहाँ झुण्ड-के-झुण्ड यात्री आते, जो तीर्थ-पुरोहितोंकी दक्षिणाके हेतु रुपयोंके बदले छोटी खैरीज लेते थे और उसके व्यवसायको सदा चलता रखते थे। राजाके खजानेसे थोड़ी-सी मुहर और रुपयोंके बदले ढेर-के-ढेर पैसे और छोटी खैरीज लाना उसका काम था। थोड़े दिनों बाद पैसोंको गिनकर ढेरी लगाना उसे सिखाया गया। अपने काममें उसका खूब मन लग गया।

तीसरा मित्र कसरती जवान था। उसके बलिष्ठ पुट्टे मेहनतका काम खोजते थे। वह एक गल्ला अनाजके व्यापारीके यहाँ जा पहुँचा। उसके बलिष्ठ शरीरको देखकर उस व्यापारिने तुरंत उसे कामपर रख लिया। सैकड़ों बोरे गाड़ियोंसे उतारकर गोदाममें रखना, गोदामसे निकालकर गाड़ियोंपर लादना उसका काम था और उसे इसमें बड़ा आनन्द आता था।

चौथा मित्र शरीरका स्थूल था और बुद्धि भी उसकी स्थूल ही थी। उसने एक शाकभाजीके व्यवसायीके यहाँ नौकरी की। सैकड़ों बीघे खेतोंमें मालिककी तरकारियाँ लहलहाती थीं। जिधर निगाह जाती, उधर उसके हरे-भरे खेत लहलहाते थे। बस, इसका यही काम था कि नित्य गाड़ी भरकर तरकारी लाये और शहरमें बेचकर पैसे खड़े करे।

चारों मित्र खूब मेहनतसे काम करने लगे और कुछ कालके लिये अपने पहाड़ी गाँवको भूल ही गये। थोड़े खर्चमें उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो जातीं और शेष धन संचित होनेके लिये बच रहता। चारों मित्र मन लगाकर संचय करने लगे।

Arma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma
पहला मित्र रात-दिन सोनके बीच रहता था।

तीसरा मित्र इसपर हँस देता और कहता—‘बस, तुम्हारी कमाई गठरियोंतक ही सीमित है—अरे, मेरी कमाई बोरोंकी थाकोंमें भरी रखी है। जब मैं घर लौटूँगा तो मेरे पीछे एक कोड़ी ऊँट पाँत बाँधकर चलेंगे। महीनोंतक यही चर्चा गाँवमें रहेगी और लड़के खेलमें मेरी नकल किया करेंगे।’—और उसका बलिष्ठ शरीर चार अंगुल फूल जाता।

चौथे मित्रने आँसू पोंछते हुए कहा—‘नहीं मित्र! मालिकने कोई बेईमानी नहीं की—वरं उन्होंने तो बिदाईमें पाँच गाड़ी आलू दिये हैं। शेष बीस गाड़ी जो आप देखते हैं, वे अस्सी गाड़ी सम्पत्तिका बचा-खचा

देखकर विषादसे जलता रहता था। उसके शरीरमें रक्त तो मानो रहा ही न था। जब वह पहाड़के निकट पहुँचा तो उसके साथ केवल एक गाड़ी रह गयी थी, जो पहाड़ी मार्गपर एक कदम आगे नहीं चल सकती थी। उसने तीसरे मित्रको एक बोरा अनाज पीठपर लादकर चढ़ते देखा तो वह भी एक बोरा आलू लेकर चलनेको प्रस्तुत हुआ, परंतु कमजोरीसे काँपते हुए पैर शरीरके बोझको भी पहाड़ी मार्गपर कठिनाईसे ले चल सकते थे। उसका हठ पूरा करनेके लिये गाड़ीवानने एक बोरा उसकी पीठपर चढ़ाया तो वह इस बुरी तरह गिरा कि यदि भगवान् रक्षा न करते तो वहीं उसका प्राणान्त हो जाता। हताश और खिन्नचित्त वह खाली हाथ पहाड़पर चढ़ने लगा। पहला मित्र उसे तथा तीसरे मित्रको बारी-बारीसे सहारा देता चलता था। दूसरे मित्रका घोड़ा भी दूसरे दिन आगे न बढ़ सका और उसे भी अपनी गठरी खोलकर एक पोटली पैसे बाँधने पड़े। पैसोंकी झंकार सुननेकी अन्तिम अभिलाषा पूरी करनेके लिये उसने शेष पैसोंमेंसे कुछ तो घोड़ेवालेको दिये और बाकी सब पहाड़परसे नीचे उड़ेल दिये जो झंकार करते हुए शीघ्र अदृष्ट हो गये।

आखिर वह शुभ दिन आया, जब चारों मित्रोंने अपने गाँवमें प्रवेश किया। उनके आनेकी खबर गाँवमें विद्युत्-गतिसे फैल गयी। गाँवके बालक, युवा, वृद्ध सब मुखियाकी चौपालमें एकत्रित हो गये और बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया। कुशल-प्रश्न और इधर-उधरकी बातोंके बाद मुखियाने कमाईकी बात छोड़ी। पहले मित्रका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा—उसने अपनी कमरसे बसनी खोली और पचास चमकती हुई अशरफियाँ फर्शपर उड़ेल दीं। गाँववालोंके मुँहसे एक साथ ‘शाबास’ निकल पड़ा। दूसरे मित्रने सूखी हँसी हँसकर अपनी पोटली खोली और समयके प्रभावसे

चुष्पी साधकर रह गये। तीसरे मित्रने दुखी चित्तसे अपनी अनाजकी गठरी खोलकर ज्यों ही फर्शपर उड़ेली, त्यों ही उसमेंसे उड़नेवाली धूल गाँववालोंके नथुनोंमें घुसने लगी और सब लोगोंने उधरसे मुँह फेर लिया और चौथा मित्र क्लान्त और थका हुआ, आत्मग्लानिकी अग्निसे धधकता हुआ, गाँववालोंके सामने पछाड़ खाकर गिर पड़ा और उसके मुँहसे एक चुल्लू रक्त फर्शपर निकल पड़ा। वही रक्त अपनी कमाईरूपमें रखकर उसके प्राणपखेरू शरीर छोड़कर उड़ गये!

नोट—चारों मित्र सत्, सत्+रजस्, रजस्+तमस्, और तमस् हैं। पहाड़ी प्रदेशका गाँव आत्माका निवासस्थान है और पंचनद देशका नगर पांचभौतिक शरीर है। नगरसे लौटकर घर आना शरीर त्यागकर आत्माका लौटना है। सत्की कमाई भूलोकमें लोगोंपर प्रकट नहीं होती, परंतु वह अक्षतरूपमें आत्माके साथ सत्यलोकतक जाती है। सत्+रजस्की कमाई उन पुण्योंके रूपमें होती है, जो मनुष्य यश और कीर्तिके लिये करता है—उसके कान सदा प्रशंसारूपी झंकारको सुननेके लिये लालायित रहते हैं। ऐसी कमाई अपनी चमक खो देती है और स्वर्गके आगे उसकी गति नहीं होती। रजस्+तमस्की कमाई अधिकतर मार्गमें ही व्यय हो जाती है और संकेतमात्रमें ऊपरके लोकोंमें पहुँच सकती है—भुवर्लोकके आगे उसकी गति नहीं होती। तमस्की कमाई तीन चौथाई मृत्युके पहले ही नष्ट हो जाती है और शेष मार्गमें समाप्त हो जाती है। ऐसी कमाई मृत्युके उपरान्त चिन्ता तथा सन्तापका कारण बनती है और ऐसे मनुष्यकी आत्मा केवल हाजिरी देकर तुरंत भूलोकको लौट आती है। समय रहते हम सबको सोच लेना चाहिये कि हमारी कमाई किस ओर जा रही है—अन्तमें पछताने और पछाड़

साधकोंके प्रति—

[एक निश्चयकी महिमा]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त रहनेवाले पुरुषोंका ऐसा निश्चय भी नहीं होता कि हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है, फिर उन्हें तत्त्वकी प्राप्ति होना तो बहुत दूरकी बात है—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २।४४)

यत्न करते हुए भी वे इस परमात्मतत्त्वको नहीं जान सकते—‘यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्य-चेतसः॥’ (गीता १५।११) कबतक? जबतक कि भोग और संग्रहमें आसक्ति है अर्थात् जबतक सांसारिक पदार्थोंसे सुख लेते रहें और रुपयोंका संग्रह बना रहे—ये भावनाएँ भीतरमें बनी हैं, तबतक परमात्मतत्त्वको स्पर्श नहीं कर सकते और परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति ही करना है—ऐसा उनका निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि उनके हृदयमें परमात्माके स्थानपर धन और भोग आकर बैठ गये हैं। ‘सुख भोगना है और सुख-भोगके लिये संग्रहकी आवश्यकता है’—यह संग्रह और भोगकी रुचि बहुत घातक है। धनका उपयोग अपने और औरोंके निर्वाहके लिये खर्च करनेमें है और धनका संग्रह तो केवल पतन करनेवाला है। संग्रह करनेकी जो रुचि है कि मेरे पास इतनी वस्तुएँ हो जायँ, इतने रुपये हो जायँ—यह बहुत ही बाधक है।

रुपयों और पदार्थोंके संग्रहकी रुचिकी तो बात ही क्या है। पढ़ाई करके ज्ञान अधिक संग्रह कर लूँ, बहुत पढ़ाई कर लूँ, बहुत शास्त्र पढ़ लूँ, इस प्रकार पढ़ाईके संग्रहकी भावना जबतक रहेगी, तबतक मनुष्य परमात्मतत्त्वको जान नहीं सकता और उसकी प्राप्तिके विषयमें निश्चय भी नहीं कर सकता। जो अपना कल्याण चाहता है, उसकी बुद्धि एक ही होती है,

उसका एक ही निश्चय होता है कि ‘हमें तो परमात्मतत्त्वको ही प्राप्त करना है और यही हमारे जीवनका ध्येय है।’

जिनका ऐसा एक निश्चय नहीं है, जो संसारके भोग और संग्रहमें आसक्त हैं, उनकी बहुत बुद्धियाँ होती हैं और वे बुद्धियाँ भी अनन्त शाखाओंवाली होती हैं अर्थात् उनकी बुद्धियाँ भी अनन्त होती हैं और एक-एक बुद्धिकी शाखा भी अनन्त होती है। जैसे—पुत्र मिले, यह एक बुद्धि हुई और पुत्र-प्राप्तिके लिये किस औषधका सेवन करें। किस मन्त्रका अथवा किस जप आदिका अनुष्ठान करें अथवा किस संतका आशीर्वाद लें अथवा और कहाँकी यात्रा करें, जिससे पुत्रकी प्राप्ति हो। तात्पर्य यह है कि पुत्रकी प्राप्ति, यह तो एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके अनेक उपाय उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुई। इसी तरह धनकी प्राप्ति एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके लिये व्यापार करना, नौकरी करना, चोरी करना, डाका डालना, ठगाई करना, धोखा देना आदि उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुई। ऐसे पुरुषोंका परमात्माकी प्राप्ति निश्चय नहीं हो सकता।

गीताजीमें भगवान्ने परमात्माकी प्राप्ति-विषयक एक निश्चयकी बड़ी भारी महिमा गायी है। इतनी विलक्षण महिमा बतायी है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती। ‘अपि चेत्सुदुराचारः’—सांगोपांग दुराचारी, जिसके दुराचरणमें कोई कमी नहीं है। जो झूठ, कपट, बेईमानी, अभक्ष्य-भक्षण, वेश्या-गमन, जूआ खेलना, चोरी, व्यभिचार आदि जितने दुराचार सम्भव हैं, सब करनेवाला है। ऐसा पुरुष भी यदि परमात्माकी ओर ही चलनेका निश्चय कर ले तो भगवान् कहते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये—

यदि भोग और संग्रहकी रुचिको रखते हुए परमात्माकी प्राप्ति करना चाहें तो परमात्माकी प्राप्ति तो दूर रही, उनकी प्राप्तिका एक निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि जहाँ भोगोंकी रुचि है, वहीं परमात्माकी रुचि है। रुचि जबतक भोग-संग्रहमें है, मान, बड़ाई, आराममें है, तबतक कोई भी परमात्मामें नहीं लग सकता; क्योंकि उसका चित्त भोगोंकी रुचिद्वारा हरा गया। जो शक्ति थी, वह भोग और ऐश्वर्यमें लग गयी। भोग और संग्रहमें मनुष्यको मिलेगा कुछ नहीं, प्रत्युत वह परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जायगा। धोखा हो जायगा धोखा! मान-बड़ाई कितने दिन रहेगी? मान-बड़ाई मिलकर भी क्या निहाल करेगी?

संख्या ७]

भोग कितने दिन भोगेंगे? संग्रह कितने दिन रहेगा? यहाँ खूब धन इकट्ठा किया, पर यदि आज आयु समाप्त हो गयी तो आज ही मर जाओगे, धन यहीं रह जायगा और परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जाओगे।

इसलिये भगवान्‌के कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि परमात्माकी प्राप्ति वास्तवमें चाहते हो, तो भोग और संग्रहको महत्त्व मत दो। आजकल तो खर्चके लिये ही रुपयोंका महत्त्व नहीं, अपितु उनकी संख्याको महत्त्व दे रहे हैं। हम लखपति हो जायँ, हमारे पास इतना संग्रह हो जाय। पासमें रुपया है पर उसे खानेमें खर्च नहीं कर सकते, अच्छे काममें खर्च नहीं कर सकते। केवल एक धुन धन जोड़नेकी लगी हुई है—‘संख्या कम न हो जाय।’ मूलधनमें कम-से-कम एक लाख रुपया तो इस साल जमा हो जाय, ऐसी रुचि रहती है। लड़कोंको उपदेश देते हैं कि ‘रुपया जोड़ो! जोड़ो नहीं, तो कमाओ, उतना खाओ! मूल पूँजी खर्च करते हो? तुममें बुद्धि नहीं है।’ मूल खर्च करते दुःख होता है तो मूलमें क्या तूली लगाओगे? खर्च नहीं करोगे तो क्या करोगे?

सज्जनो! यह संग्रहकी वृत्ति नरकोंमें ले जानेवाली है। माँ-बाप बूढ़े हो जाते हैं तो वे लड़कोंको समझाते हैं कि ‘तुमलोग बुद्धिहीन हो। मूलधन खर्च करते हो? इस मूलधनको मत छेड़ो। जितना कमाओ उतना खर्च कर लो, पर मूलधन कम मत करो।’ ऐसे पुरुष परमात्माकी प्राप्ति कर ही नहीं सकते। साधु हो, गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, भाई हो, चाहे बहन हो, जबतक संग्रह करनेकी तथा संग्रह बना रहे—यह रुचि रहेगी, तबतक वे परमात्माकी प्राप्ति के मार्गमें नहीं चल सकते। यदि आपके भीतर और संग्रहकी रुचि नहीं है तो आपके पास चाहे लाखों-करोड़ों रुपये हैं, पर वे आपको अटका नहीं सकते। बैंकोंमें बहुत धन पड़ा है, शहरमें बहुत मकान हैं; पर वे हमें नहीं अटकाते। क्यों नहीं अटकाते? क्योंकि उनमें हमारी

ममता नहीं है तथा उनकी प्राप्ति की इच्छा नहीं है। यदि उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हो जायगी तो उनमें हम फँस जायँगे।

हमारा बन्धन कहाँ है? जितने धनमें हमने ममता की है, वही तो बाँधनेवाला है। संसारमात्रसे हमारी मुक्ति स्वतः है। दस-बीस आदमियोंको, जिन्हें हमने अपना मान रखा है, वही बन्धन है। लाख-दो लाख रुपयोंको हमने अपना मान रखा है, मकानको अपना मान रखा है, वही फँसावट है। हमने जिन्हें अपना नहीं माना है, वे मनुष्य मर जायँ, उन्हें कुछ भी हो जाय, तो हमारे चित्तपर कुछ असर नहीं पड़ता। जिन मकानोंको हमने अपना नहीं माना, वे सब-के-सब धराशायी हो जायँ तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता। जिन रुपयोंको हमने अपना नहीं माना, वे चले जायँ, लाखों-करोड़ोंकी उथल-पुथल हो जाय तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि उनमें हम बँधे हुए नहीं हैं। सारे संसारसे आपको बन्धन नहीं है। आपने इन थोड़ोंको जो अपना मान रखा है, यदि इनकी ममताका भी आप त्याग कर दें तो निहाल हो जायँगे। अधिक बन्धन नहीं है। अधिक-सा बन्धन तो छूटा हुआ है ही अर्थात् जिनमें आपकी ममता नहीं, उनसे आप मुक्त हैं ही। जिनमें आप ममता करते हैं, उनमें आप बँध जाते हैं।

मनुष्योंमें ऐसी ही चाल है कि वे अधिक व्यक्तियोंमें, पदार्थोंमें ममता करना चाहते हैं। वक्ता भी चाहता है कि श्रोता अधिक आ जायँ। यदि ऐसी इच्छा नहीं रखेंगे तो फँसेंगे कैसे? वे भी फँसनेकी तैयारी करते रहते हैं। इसी प्रकार अन्य लोग भी अपने-अपने क्षेत्रमें अधिक-से-अधिक भोग मिल जाय—यह चाहते रहते हैं, पर अधिक चाहनेसे मिलता नहीं। यदि मिल जाय तो टिकेगा नहीं और वह यदि टिकेगा भी, तो आप नहीं टिक सकेंगे। इस तरह आप फँसे ही रहेंगे, मरनेके बाद भी आप छूट सकेंगे नहीं।

मैं-मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।

कब तक निबाहे रामजी, रुई लपेटी आग ॥

जैसे रुईमें लपेटी आग कितने दिन ठहरेगी ? वह तो जलायेगी ही । ऐसे ही जिन पदार्थोंमें ‘मैं और मेरापन’ करते हो, वे कितने दिन ठहरेंगे ? आप सम्बन्ध रखेंगे तो बँध ही जायँगे । इसलिये प्रत्येक भाई-बहनके लिये बहुत आवश्यक है कि वे संसारके भोगोंको और उनके संग्रहकी इच्छाको भीतरसे त्याग दें ।

भीतरसे पदार्थोंकी इच्छा छोड़ देनेपर पदार्थ प्रारब्धानुसार स्वतः आते हैं। चाहनासे पदार्थोंके मिलनेमें आड़ लगती है। अपनी चाहनाका त्याग होनेसे आपकी आवश्यकता सर्वत्र फैलती है। लोगोंके मनमें आपकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वतः प्रेरणा होती है। हमारे चाहना रखते हुए हमारी इच्छा हममें सीमित हो जाती है और मिलनेमें आड़ लग जाती है। चाहना रखते हुए जब हमें धन, मकान मिलता है, तब हम अपनेको सफल मानते हैं; चाहनाका त्याग कर देनेपर वस्तुएँ खुली आयेंगी और हमारी सेवामें लगकर सफल होंगी।

परमात्म-तत्त्वमें नित्य-निरन्तर स्थिति चाहते हैं तो उत्पत्ति-विनाशवाली वस्तुओंका आकर्षण सर्वथा मिटाइये। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओंमें फँसे रहेंगे, तो अनुत्पन्न तत्त्व नहीं मिलेगा। सदा साथमें रहता हुआ परमात्मा नहीं मिलेगा। उससे वंचित रह जायँगे। भोग और संग्रहकी रुचि रखेंगे तो परमात्मासे वंचित रहनेके सिवाय अन्य कुछ लाभ नहीं होगा। धन भी नहीं मिलेगा। यदि मिलेगा भी तो रहेगा नहीं। न भोग मिलेंगे। यदि मिलेंगे तो वे रहेंगे नहीं और न आप रहेंगे। केवल आपको जन्म-मरणमें डालनेवाला, नरकोंमें ले जानेवाला बन्धन रहेगा। इसलिये भोग और संग्रहकी इच्छा सर्वथा त्याग दें।

आप अपने पास धन रखें, इसमें मेरा विरोध नहीं है, पर आप जो उसके गुलाम बनते हैं, उससे मेरा विरोध है।

हैं। न्याययुक्त कमाते हुए लाख रुपया आ जाय तो मौज, लाख चला जाय तो मौज! लाखों-करोड़ों आ जायँ तो वही प्रसन्नता; सब-के-सब चले जायँ तो भी आपको वही प्रसन्नता। तब तो आप वास्तवमें धनपति हैं। पर धन आनेसे तो हो जायँ प्रसन्न और चले जानेसे रोने लग जायँ तो आप धनदास हुए, धनपति नहीं हुए। रुपये जानेसे रोना-ही-रोना आ रहा है—हमारा मालिक (धन) चला गया, अब कैसे रहें? उससे पूछा जाय कि क्या चला गया भाई? अरे, जिसने कमाया था, वह तो मौजूद है? परंतु बात बुद्धिमें नहीं आती; क्योंकि उसने धनको अपना इष्टदेव मान रखा है। जिन्होंने धनको इष्टदेव मान रखा है, उन्हें झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजीका आश्रय लेना पड़ता है। उनके मनमें दृढ़तासे यह भाव जम जाता है कि झूठ, कपट, जालसाजी, बेईमानी, ठगी, ब्लेकमार्केट किये बिना पैसे पैदा नहीं हो सकते। जैसे भगवान्का भक्त सद्गुणोंका सहारा लेता है, ऐसे ही धनके भक्तको झूठ, कपट, छल, ठगी आदि दुर्गुणोंका सहारा लेना ही पड़ता है। कोई कितनी सच्ची बात कहे, पर उन्हें यही बात जँची हुई है कि झूठ, कपट, चोरी बिना पैसा पैदा नहीं हो सकता। ब्रह्माजीकी भी शक्ति नहीं, जो उन्हें समझा दें। कोई उन्हें ठीक बात समझाये तो उसे वे मूर्ख समझते हैं कि आजके जमानेमें झूठ, कपट, बेईमानी, अन्याय बिना काम कैसे चल सकता है? यह दृढ़ धारणा उनके मनमें बैठ गयी है। इसलिये यदि आपको परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करनी है तो धन आदि पदार्थोंके भोग और संग्रहकी आशाका सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा।

भोग और संग्रहकी रुचि रखते हुए तत्त्वकी प्राप्ति, उसकी अनुभूति सम्भव नहीं। आजकल भगवत्तत्त्वकी बातें शीघ्र समझमें न आनेका मुख्य कारण यही है कि 'भोग और संग्रहकी रुचि छोड़ते नहीं और सच्चे हृदयसे इस रुचिको छोड़ना चाहते नहीं। इस रुचिको त्यागे बिना

परमात्मतत्त्वकी बातें समाझमें आतीं नहीं।'
 Parma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma

दूसरा उपमान और क्या हो सकता है? यह द्वन्द्व है और यह द्वन्द्वात्मकता ही इसका सबसे बड़ा बल भी है। हिरण्यकशिपुको वरदान था कि 'वह न दिन में मरेगा न रात में, न बाहर मरेगा न भीतर, न शस्त्रसे मरेगा न अस्त्रसे, न मनुष्यसे मरेगा न पशुसे।' भगवान् ने इसी द्वन्द्वात्मकताकी सन्धिको पकड़ा। वे नृसिंह बन गये—न पूरे मनुष्य न ही पूरे पशु और देहलीमें ले जाकर अपनी गोदमें रखकर, सन्ध्याके समय तीव्र नखोंद्वारा उस दैत्यका वध कर डाला। द्वन्द्वात्मक भौतिकताको अपनी 'न मृगं न मानुषम्' (श्रीमद्भा० ७।८।१८) —की अनिर्वचनीयतासे निःशेष कर डाला। इस लीलासे प्रह्लाद (प्रकृष्ट आह्लाद) अर्थात् 'ब्रह्मानन्द' का सर्वात्मना सम्पोषण संघटित हो सका। गोस्वामीजीने 'राम' इस दो वर्णोंके^१ सम्मिलित शब्द-विग्रहको 'नर-हरि'—रूपमें उपकल्पित किया है। राम-मन्त्रका प्रथमाक्षर रेफ (र्) ही इसकी शक्ति है। यह अन्तःस्थ वर्ण है। तन्त्रशास्त्रोंके अनुसार यह अग्निबीज^२ तथा पंचप्राणमय है^३ अतएव यहाँ हम नरताके प्रतीकरूपमें ग्रहण कर सकते हैं। 'नर' शब्द गतिशीलता^४ एवं विचार-प्रवणताको उपलक्षित करता है। लोभका दमन मनुष्यके मननशीलतारूप विवेकसे ही सम्भव है, किंतु काम बिना पराक्रम या वीरताके दूर नहीं होता। इस मनोभावको दबाने या हटानेके लिये किसी भयप्रद वस्तुका उपस्थित हो जाना अत्यन्त सहायक होता है। अत्यन्त कामान्धके भी समीप यदि सहसा कोई सिंह, व्याघ्र या सर्प आ जाय तो उसका वह आवेश क्षण-भरमें दूर हो जाता है और वह भयसे काँपने लगता है; क्योंकि कामवासनाकी चरितार्थता

१. यद्यपि 'राम' शब्द में र्+आ+म्+अ इस प्रकार व्याकरणकी दृष्टिसे चार वर्ण हैं। अ-कारको द्विरावृत्त मानकर उसको एक वर्ण ही माना जाय तो यहाँ तीन मूल वर्ण र्, अ, म् सिद्ध हुए, जिनको गोस्वामीजीने 'हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥' (रा०च०मा० १।१९।१) कहकर रेखांकित किया है, किंतु व्यावहारिक दृष्टिसे ऐसे स्थलोंमें स्वर और व्यंजनके संयुक्ताक्षरको एक वर्ण मानकर ही गिना जाता है, तभी 'हरिरित्यक्षरद्वयम्' (पद्मपु० उत्तरखण्ड ७१।१२) आदि वचनोंकी संगति लग सकती है। स्वयं गोस्वामीजी भी इसी दृष्टिसे 'राम' इस भगवन्नाममें दो वर्ण या अक्षर ही स्वीकार करते हैं, यथा—'राम नाम बर बरन जुग' (रा०च०मा० १।१९), 'आखर मधुर मनोहर दोरु।' (रा०च०मा० १।२०।१) 'तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥' (रा०च०मा० १।२०)

२. अनन्तोऽग्न्यासनः (शारदातिलक-तन्त्र)

३. रेफञ्च चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीद्वयसंयुतम् । पञ्चप्राणमयं वर्णम्..... । (कामधेनु-तन्त्र, षष्ठ पटल)

४. 'नृ नये' (भ्वा० क्त्र्या० प० से) अच् प्रत्यय 'नरति, नृणाति वा नरः' (अमरकोष २।६।१ पर 'रामाश्रमी' टीका)

वह व्यक्ति तो आश्चर्यसे साधुका मुख देखता रह गया।

‘मन क्रम बचन करेहु सेवकाई’

(श्रीबालकृष्णजी कुमावत)

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीलक्ष्मणजीके चरित्रको समर्पित सेवकके चरित्रके रूपमें दर्शाया है। जहाँ भरत प्रेमकी साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं, वहाँ लक्ष्मण सच्चे सेवककी भूमिकामें खरे उतरते हैं। जब भगवान् श्रीराम वनको प्रस्थित होने लगे तो लक्ष्मण अधीर हो उठे और उन्होंने प्रभुकी सेवामें रहनेके लिये दृढ़ संकल्प कर लिया। वे माता सुमित्रासे प्रभु श्रीरामके



साथ वन जानेके लिये आज्ञा लेने जाते हैं। माताजी सहर्ष स्वीकृति ही नहीं देती हैं, अपितु इसे समस्त पुण्योंका फल भी निरूपित करती हैं—

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

(रा०च०मा० २।७५।३-४)

वे कहती हैं—जबतक श्रीरामजी अयोध्यामें रहे, तबतक सबका भाग्य रहा, सबको दर्शन होते रहे, सबको सेवा मिलती रही। वनमें तुम्हारा ही भाग्य है, सब सेवा तुम्हींको प्राप्त हुई। ऐसा ही श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणके चालीसवें सर्गमें पुरवासियोंने कहा है—

अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्।

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्।

एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि॥

(वा० रा० २।४०।२५-२६)

अर्थात् अहो लक्ष्मण! तुम धन्य हो, तुम्हारे मनोरथ सिद्ध हुए, जो तुम प्रियवादी देवसदृश भ्राताकी सेवा करोगे। तुम्हारी बुद्धि प्रशंसनीय है। तुम्हारे भाग्यका बड़ा भारी अभ्युदय हुआ, जो तुम साथ जा रहे हो। यह तुम्हारे स्वर्गका अर्थात् सर्वाधिक सुखका मार्ग है।

श्रीसीतारामचरणानुराग होना ही सबसे बड़ा फल है। गीतामें भी कहा है—

‘सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।’

वनमें प्रभुके साथ जानेकी अनुमति माता सुमित्रासे प्राप्त हो जानेपर लक्ष्मणजीके हर्षकी सीमा नहीं रही। जाते समय माता सुमित्राने उन्हें जो उपदेश किया, वह उपदेश मानवमात्रके लिये दिया गया है। सेवा करते समय हमें किन-किन विकारोंसे बचना है, सेवा मन, वचन और कर्मसे होनी चाहिये, सेवकमें प्रमादका उदय नहीं हो और स्वामीको तनिक भी क्लेश नहीं हो आदि बातें सेवकको सदैव अपनानी चाहिये। गोस्वामीजी निम्न पंक्तियोंमें माता सुमित्राके माध्यमसे सेवाके आवश्यक तत्त्वोंका वर्णन करते हैं—

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहूँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

(रा०च०मा० २।७५।५-८)

इन पंक्तियोंमें सेवकका धर्म निरूपित किया गया है। सेवकको पाँच बातोंके वश स्वप्नमें भी नहीं होना चाहिये—राग, रोष, ईर्ष्या, मद (घमण्ड) तथा मोह।

सब प्रकारसे विकारोंको त्यागकर मन-कर्म-वचनसे सेवा करना चाहिये। माता सुमित्राने लक्ष्मणजीको यह

शत्रुघ्नजीसे कहती हैं कि तुम जाओ, सेवा करो। गीतावलीमें गोस्वामीजीने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है— सुनि रन घायल लषन परे हैं।

स्वामिकाज संग्राम सुभटसों लोहे ललकारि लरे हैं॥
सुवन-सोक, संतोष सुमित्रहि, रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात, छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपिसों कहति सुभाय, अंबके अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर, जद्यपि धनु दुसरे हैं॥
'तात! जाहु कपि सँग', रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं॥
अंब-अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं॥
(गीतावली—लंकाकाण्ड पद १३)

अर्थात् जब सुमित्राजीने सुना कि लक्ष्मणजी युद्ध-स्थलमें घायल पड़े हैं और उन्होंने अपने स्वामीके लिये विपक्षी योद्धा मेघनादसे रणभूमिमें खूब ललकारकर लोहा लिया है, तो उन्हें पुत्रकी दशासे क्षणिक शोक तो हुआ पर इस बातसे संतोष हुआ कि उन्होंने रघुनाथजीकी भक्तिको स्वीकार किया। उनके अंग एक क्षणमें सूख जाते हैं और फिर दूसरे ही क्षणमें आनन्दसे हरे हो जाते हैं। तब माता सुमित्राने नेत्रोंमें जल भरकर स्वभावसे ही हनुमान्जीसे कहा—'रामजी कुअवसरमें भाईसे बिछुड़ गये, यद्यपि धनुष उनके हाथमें है, फिर वे शत्रुघ्न की ओर संकेत करते हुए बोलीं—शत्रुघ्न! तुम हनुमान्के साथ जाओ।' यह सुनकर शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर ऐसे पुलकित हो उठे, मानो सभी देव उनके अनुकूल हो गये हों। माता और छोटे भाईकी यह दशा देखकर हनुमान्जी और भरतजी बड़े ही ग्लानिग्रस्त हो गये। तुलसीदासजी कहते हैं—तब माताने उन सबको समझाकर सचेत किया।

स्वामी प्रज्ञानन्दजीने एक स्थानपर लिखा है कि 'श्रीरामचरितमानसकी सुमित्राके समान माताका चरित्र

अन्य किसी ग्रन्थमें तो क्या अन्य किसी देश या भाषामें मिलना असम्भव है। अथसे इतितक सुमित्राजीके हृदयको पुत्र-विरहका स्पर्श भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने रामभक्त पुत्रको चौदह वर्षके वनवासके लिये जाते समय भी हृदयसे नहीं लगाया। धन्य है भक्तजननी और उसका—'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' हृदय। उन्होंने अपने द्वारा कही हुई इस पंक्तिको पूर्णतः सार्थक किया—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

(रा०च०मा० २।७५।१-२)

ऐसी माताका पुत्र लक्ष्मणजीके समान सर्वलक्षण-सम्पन्न न होगा तो किसका होगा? पद्मपुराणके पातालखण्डमें माता सुमित्राके सम्बन्धमें कहा गया है कि पतिको प्रिय सुमित्राअम्बाजी धन्य हैं, जिन्होंने वीर लक्ष्मणको उत्पन्न किया, जो अहर्निश रामचरण-सेवामें रत रहे।

धन्या सुमित्रा सुतरां वीरसूस्वपतिप्रिया।

यस्यास्तनूजो रामस्य चरणा सेवतेऽन्वहम्॥

(पद्मपुराण पातालखण्ड १।४१)

लक्ष्मणजीने अपनी माताके उपदेशका चौदह वर्षतक अक्षरशः पालन किया। उन्होंने सोचा कि जाग्रत अवस्थामें तो माताकी आज्ञाका उल्लंघन कदापि नहीं हो सकता, परंतु सो जानेपर नींदमें स्वप्न आनेपर उक्त विकारोंमेंसे कोई भी विकार आ सकता है, इसलिये उन्होंने यह संकल्प किया कि वे चौदह वर्षपर्यन्त सोयेंगे ही नहीं। जब नींद नहीं आयेगी तो स्वप्न आनेका प्रश्न ही नहीं उठता और वे चौदह वर्षतक नहीं सोये।

यदि राष्ट्रका प्रत्येक नागरिक राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह—इन विकारोंको त्यागकर राष्ट्रकी सेवामें लग जाय तो रामराज्यकी स्थापना आज भी हो सकती है।

‘सत संगति दुर्लभ संसारा’

(वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)

देवर्षि नारदजी अपने भक्तिसूत्रमें सत्संगतिकी महिमा एक बार त्रेता युग माहीं। संभु गए कुंभज र्षि पाहीं॥
बताते हुए कहते हैं— (रा०च०मा० १।४८।१)

‘महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।’ (सूत्र ३९) तुलसी बाबा कहते हैं—
 महत्पुरुषोंका संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥
 ‘लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव’ उस भगवान्की कृपासे ही (रा०च०मा० ७।१२३।६)
 महत्पुरुषोंका संग मिलता है। बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।

‘तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।’ (सूत्र ४१) मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दूढ़ अनुराग॥
 क्योंकि भगवान् और उनके भक्तों में भेद नहीं है। (रा०च०मा० ७।६१)

‘तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्।’ (सूत्र ४२)
अतएव उस सत्संगकी ही साधना करो, उसीकी ही
साधना करो।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि महापुरुष किसे कहें ? जिनके पास अकूत सम्पत्ति है या जो लच्छेदार भाषण देते हैं या जिनके हजारों अन्धश्रद्धालु शिष्यमण्डल हैं अथवा जिनके सैकड़ों सर्वसुविधायुक्त आश्रम हैं— उन्हें संत कहें ?

इस विषयमें भगवतरसिकजी महाराज संतोंके लक्षण बताते हुए कहते हैं—

इतने गुन जामें सो संत ।

श्रीभागवत मध्य जस गावत, श्रीमुख कमलाकंत ॥
हरिकौ भजन साधुकी सेवा, सर्वभूत पर दाया ।
हिंसा, लोभ, दंभ, छल त्यागै, बिषसम देखै माया ॥
सहनसील, आसय उदार अति, धीरजसहित बिबेकी ।
सत्य बचन सबसों सुखदायक, गहि अनन्य ब्रत एकी ॥
इंद्रीजित, अभिमान न जाके, करै जगतकों पावन ।
भगवतरसिक तासुकी संगति तीनहुँ ताप नसावन ॥

तो भैया ! भगवतरसिकजी महाराजकी कसौटीपर कसकर अच्छी तरह पूछ-परखकर उपर्युक्त गुणोंसे युक्त संतका सत्संग करनेपर ही कल्याणका मार्ग प्रशस्त होगा ।

‘गुरु कीजै जान पानी पीवै छान।’

सत्संगके लिये भोलेबाबा भी त्रेतायुगमें कुम्भज ऋषिके पास जाते हैं—

तुलसी बाबा कहते हैं—

सत संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दंड भरि एकउ बारा ॥
(रा०च०मा० ७।१२३।६)

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।

मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥

(रा०च०मा० ७।६१)

क्षणमात्रका सत्संग भी संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है। इस विषयमें एक बड़ा रोचक आख्यान है, जो सत्संगकी महत्ता प्रदर्शित करता है। विश्वामित्रजी और वसिष्ठजी महाराजमें यह विवाद छिड़ गया कि तपस्या श्रेष्ठ है या सत्संग। विश्वामित्रजी तपस्याके धनी हैं। अतः उन्हें अपनी तपस्याका अतीव घमण्ड है तो विश्वामित्रजी अपनी तपस्याकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन कर रहे थे और वसिष्ठजी महाराज कह रहे थे कि ठीक है, तपस्या अपनी जगह श्रेष्ठ है, परंतु सत्संग भी कम नहीं है।

अब विवादका हल कौन करे, तो दोनों महात्मा ब्रह्माजीके पास गये, प्रार्थना की—महाराज! आप कृपाकर बतायें कि तपस्या श्रेष्ठ है या सत्संग? ब्रह्माजीने दोनों महात्माओंको देखा और मनमें विचारा कि जिसके विरुद्ध भी निर्णय दूँगा तो दोनोंमेंसे एकको अवश्य बुरा लगेगा। अतः ब्रह्माजी बोले—भैया! मुझे सृष्टिके कार्यसे अवकाश ही कहाँ है, जो आप दोनोंकी शंकाका समाधान कर सकूँ। आप दोनों भोलेबाबाके पास कैलास चले जायँ, वे अवश्य ही आप दोनोंकी शंकाका समाधान कर सकेंगे। दोनों महात्मा कैलासपर गये और अपना प्रश्न दोहराया। शंकरजीने भी अच्छी तरह सोच-विचार कर कहा—भैया! मैं तो निरन्तर रामनामका जप करता रहता हूँ, मुझे इतना अवकाश ही कहाँ कि आपकी शंकाका समाधान कर सकूँ, मेरी सलाह है कि आप दोनों भगवान् शेषनागके पास पाताल पधारें, वे अवश्य आपकी शंकाका समचित

समाधान कर सकेंगे। दोनों महात्मा शेषजीके पास पातालमें पहुँचे और उनके समक्ष भी अपना प्रश्न दोहराया। शेषजी बोले—

समाधान कर सकेंगे।

दोनों महात्मा शेषजीके पास पातालमें पहुँचे और उनके समक्ष भी अपना प्रश्न दोहराया। शेषजी बोले—
 भैया! मेरे सिरपर पृथ्वीमाताका भार है। इसे कोई थोड़ा हलका कर दे तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर सरलतासे दे सकूँगा। विश्वामित्रजी आप थोड़ा प्रयत्न करें, विश्वामित्रजीने अपनी साठ वर्षकी तपस्याका फल पृथ्वीमाताको अर्पण किया और प्रार्थना की कि हे पृथ्वीमाता! मैं अपनी साठ वर्षकी तपस्याका फल आपको अर्पण करता हूँ, आप थोड़ा शेषजीको अवकाश दे दें ताकि शेषजी महाराज हमारी शंकाका समाधान कर सकें, फिर भी पृथ्वीमाता एक इंचमात्र भी ऊपर न उठ सकीं। तब शेषजीने वसिष्ठजीसे कहा—आप कुछ प्रयत्न करें, वसिष्ठजीने प्रार्थना की—हे पृथ्वीमाता! मैं एक घड़ीका सत्संग आपको अर्पण करता हूँ, आप शेषजीके सिरको अपने भारसे किंचित् अवकाश दे दें ताकि शेषजी महाराज हमारी शंकाका समाधान कर सकें और तत्काल पृथ्वीमाता शेषजीके सिरसे किंचित् ऊपर उठ गयीं। तब विश्वामित्रजी बोले—शेषजी महाराज! अब आप हमारी शंकाका समाधान करनेकी कृपा करें। शेषजीने कहा—अब भी शंकाका समाधान करनेकी आवश्यकता रह गयी क्या? जो काम आपकी साठ वर्षकी तपस्या न कर सकी, वह एक घड़ीके सत्संगने करके दिखाया है, अतः मेरे विचारमें तपस्यासे सत्संग बहुत ही श्रेष्ठ है। तुलसी बाबा कहते हैं, अनेक जन्मोंके प्रभूत पुण्य हों, तभी महत्पुरुषोंका

सत्संग प्राप्त होता है—

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

(रा०च०मा० ७।४५।६)

तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

(रा०च०मा० ७।६१।४)

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।

तुलसी संगति साधकी हरे कोटि अपराध॥

मन मैले तन ऊजरे बगलन कैसे भेक।

इनते तो कागा भले जो तर ऊपर एक॥

तो सज्जनों! खूब सोच-विचारकर भगवतरसिकजी

महाराजकी कसौटीपर खूब कसकर उच्चकोटिके महत्पुरुषोंका संग अवश्य करें। आज भी महत्पुरुषोंका अभाव नहीं है, आवश्यकता है तो हमारे अन्तःकरणमें सत्संगके प्रति भावकी। श्रीरामचरितमानसमें संतकी कसौटी दी गयी है, वहाँ वर्णन है कि गरुड़जीने जब काकभुशुण्डिजीके आश्रममें प्रवेश किया, तभी उनका मोह, संशय और भ्रम सब नष्ट हो गया। वे काकभुशुण्डिजीसे कहते हैं—

देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

(रा०च०मा० ७।६४।२)

काकभुशुण्डिजीके आश्रमकी विशेषता थी कि मायाके गुण-दोष वहाँ प्रवेश नहीं करते थे। वस्तुतः सच्चे संतोंका यह प्रभाव रहता है कि उनके सात्त्विक स्वभावके कारण वहाँके जड़-चेतन समस्त पदार्थ सात्त्विक हो जाते हैं, जबकि असंतके पास जानेपर मन और अधिक भौतिक चाकचिक्यमें फँस जाता है।

गौकी स्तुति

(श्रीसतीशचन्द्रजी चौरसिया 'सरस')

* गौएँ मेरी मैं गौओं का, वे जहाँ रहें मैं वहीं रहूँ। *

* गौएँ जो-जो दुःख सहन करें, उनसे बढ़कर मैं दुःख सहूँ॥ *

* गौओं से यह ब्रह्माण्ड व्याप्त, शुभ कामधेनु है दिव्य नाम। *

* उस भूत और भावी माँ को, मेरा प्रणाम शत-शत प्रणाम॥ *

नसीबकी चाभी कर्मके हाथ

(डॉ० गो० दा० फेगडे)

संसारमें दो प्रकारके लोग पाये जाते हैं—कोई भाग्यको दोष देकर रोता-कुढ़ता है तो कोई भाग्यको चुनौती देकर हँसते-गाते सफलताकी मंजिलकी ओर चलता रहता है और एक दिन वह उसे पा भी लेता है। भारतवर्षमें आमतौरपर ऐसी धारणा है कि मनुष्यको जो भी यश-अपयश, अमीरी-गरीबी या सुख-दुःख मिलता है—वह उसके भाग्यसे मिलता है, वह पूर्वजन्मके कर्मका फल है। भाग्यवादी लोग समझते हैं कि भाग्यको बदला नहीं जा सकता, वे उसे बदलनेकी कोशिश भी नहीं करते, कर्मवादी लोगोंको यह धारणा मंजूर नहीं, वे परिस्थितिके आगे झुकते नहीं, अपितु उसपर विजय पानेकी कोशिश करते हैं। यह सच है कि जीवनमें कुछ बातें भाग्यसे मिलती हैं फिर भी जिन्दगीभर भाग्यका गुलाम बने रहना पलायनवादकी निशानी है, जिन्दगी तो ताशके खेलकी तरह होती है। ताशके खेलमें आपको कौन-से पत्ते मिलेंगे—यह नसीबकी बात होती है, लेकिन मिले हुए पत्ते किस तरह खेले जायँ—यह आपके ही हाथमें होता है। पत्तोंकी चाल चलना आपकी होशियारी, कुशलता और पुरुषार्थकी बात होती है। कर्णने महाभारतमें कहा है—‘दैवायत्तं कुले जन्मः मदायत्तं तु पौरुषम्।’ अर्थात् कौनसे कुलमें जन्म लेना यह भाग्यके हाथमें है, लेकिन पराक्रम करना मेरे हाथमें है। समाजमें भी हम देखते हैं कि कुछ लोग ऊँचे खानदानमें पैदा होते हैं, लेकिन कर्मसे हीन होते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग निम्न कुलमें पैदा होकर भी महान् कार्य करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं होती, खानेके मुहताज होते हैं, लेकिन वे लगन और मेहनतसे धनवान् बन जाते हैं, कुछ चाँदीका चम्मच मुँहमें डालकर पैदा होते हैं, लेकिन अपनी नादानीसे दर-दरके भिखारी बन जाते हैं। भगवान्ने तो उन्हें चमन (फुलवारी) दिया होता है, लेकिन वे उसको अपनी कर्मदरिद्रताके कारण सहारा (रेगिस्तान) बना देते हैं। जैसा जिसका कर्म होता है, वैसा उसको

फल मिलता है। संत कबीरने सही कहा है—

करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय।

बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय॥

कर्म करते समय तो विचार किया नहीं, अब पछतानेसे क्या लाभ? बबूलका पेड़ बोकर आमके फल कैसे खानेको मिलेंगे? उसी तरह अधर्मका आचरण करनेवालेको धर्मका फल कैसे मिलेगा?

सच तो यह है कि नसीब और कर्म—ये दोनों एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। वक्त कहो, कर्म कहो, नसीब कहो या कोई भी नाम दो, कर्मके सहस्र नाम हैं, सब कुछ करनेवाला एक मन ही है। जो सत्कर्म करता है, उसका नसीब खुलता है। यह कहना गलत है कि भारतमें संत-महात्माओंने धर्मकी अफीम देकर लोगोंको निकम्मा बनाया है। अज्ञानी लोग ही ऐसा कहते हैं। आजतक सब सन्तोंने प्रयत्नवादकी ही सीख दी है। महाराष्ट्रके संत समर्थ गुरु रामदासने कहा है—‘यत्न तो देव जानावा’ अर्थात् प्रयत्नको भगवान् समझो, संत तुकारामने कहा है—‘आधी कष्ट मगफल, कष्टचि नाही ते निर्फल।’ ‘केल्याने होत आहे रे आधी केलेचि पाहिजे।’—इन वचनोंका भावार्थ है, पहले श्रम करो, फिर फल मिलेगा, श्रम ही नहीं किया तो फल कैसे मिलेगा? इसलिये पहले कोशिश करनी चाहिये। ‘ईश्वर उन्हींकी मदद करता है, जो स्वयंकी मदद करते हैं’ ईसा मसीहका यह वचन दुनियाभरमें मशहूर है। गौतम बुद्धने ‘स्वयंदीप’ बननेका सन्देश दिया है। भगवान् श्रीचक्रधर स्वामीने स्पष्ट रूपसे कहा है—‘पुरुषप्रयत्नीं दैवाचं साहय’ (आचार १०२) अर्थात् नसीब कोशिश करनेवालेकी ही सहायता करता है, सिर्फ भगवान्के भरोसेपर कामयाबी कैसे मिलेगी?

आलस्य मनुष्यका महान् शत्रु है, इसके कारण अनेक अनर्थ होते हैं। जैसे—

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्।

अधनस्य कुतो मित्रममित्रस्य कुतः सुखम्॥

निराशा कामयाबीमें रोड़ा डालती है। एक किसानने अपने खेतमें कुआँ खुदवाना शुरू किया, बीस फीट खुदवानेके बाद पानी नहीं मिला तो उसने दूसरी जगहपर पच्चीस फीट खुदवाया, फिर भी पानी नहीं मिला। उसने

अर्थात् उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, पराक्रम—
ये छः गुण जिसके पास हैं, उसकी देवता भी सहायता
करते हैं यानी उसका नसीब फलता है।

गुणीजन, हमारे बुजुर्ग तो यहाँतक कहते हैं कि 'इनकार' भी सकारात्मक तरीकेसे करना चाहिये। निगेटिव शब्दोंका प्रयोग अच्छे-खासे व्यक्तिका जीवन बरबाद कर देता है। मसलन, किसी बालकसे बार-बार कहा जाय कि तुम तो निरे बेवकूफ हो, तो एक-न-एक दिन वह मान ही लेगा कि वह वाकईमें बेवकूफ है; क्योंकि सभी व्यक्ति उसे यही मानते हैं, वे कहते भी

दिया है कि वह दूसरे व्यक्तिके लिये किसी भी सन्दर्भमें निर्णायक बने। कम-से-कम कुछ भी उलटा-सीधा, गलत-सलत बोलकर किसी भी शख्सकी जिन्दगीको बरबाद करनेका तो बिलकुल भी नहीं और फिर यह भी तो जरूरी नहीं कि दूसरोंको परखनेका हमारा नजरिया सही ही हो, गलत भी हो सकता है। दुनियामें कोई पारंगत नहीं होता है। इसलिये कहा भी गया है कि निर्णायक नहीं, द्रष्टा बनो। सामनेवालेसे हम जो चाहते हैं, वैसी ऊर्जा उसकी ओर प्रवाहित करें ताकि उसके अन्दर जाकर उसकी मनःस्थितिको बदलनेमें हम सहायक बन सकें।

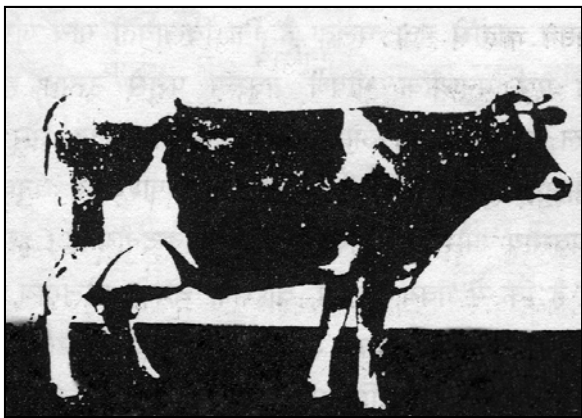
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनको शिवजीरामके यश

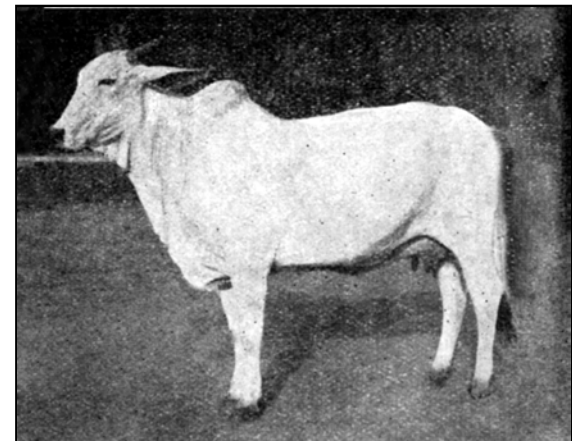
भारतीय गोवंशकी विशेषताएँ

(डॉ० श्रीअशोकजी काले)

न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंने १९९३ ई० में डायबिटीज (पहले प्रकारका इन्सुलीन डिपेन्डेंट), ऑटोइम्यून रोग, कोरोनरी आर्टरी डिजीज-जैसी कई बीमारियोंकी जड़ यूरोपियन गायोंका दूध होनेका दावा (Hypothesis) पेश किया है। इस दूधको वे A1 दूध कहते हैं। यूरोपियन गोवंशमेंसे होलस्टीन फ्रिजियन, जर्सी, स्विसब्राउनके



दूधमें BCM7 जहर होनेका मुद्दा उठानेके बाद उन्होंने ऐसी गायोंकी पहचानके लिये पशुके बालोंकी जाँच करनेकी प्रणाली विकसित की और उसका पेटेन्ट लिया। BCM7 पैदा करनेवाले दूधके उस अंशको A1 बीटाकेसीन कहते हैं और उसके पाचनसे जो खतरनाक रस निर्माण होता है, उसे BCM7 कहते हैं। यह नशीला होता है; क्योंकि इसमें अफीम ‘मारफीन’ होता है। न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंने जब एशियाके गोवंशकी जाँच की तब वे फुले



नहीं समाये। सभी भारतीय गोवंश, जिसमें गीर, साहीवाल,

हरियाना, कांकरेज, देवणी, थारपारकर गिने जाते हैं, A1 मुक्त यानी सुरक्षित पाये गये।

BCM7 का पूर्ण रूप 'बीटा-केझो-मॉर्फोन 7' है। इन वैज्ञानिकोंके अध्ययनसे प्रभावित होकर कुछ अमीर व्यक्तियोंने न्यूजीलैण्डके नागरिकोंके स्वास्थ्य रक्षाहेतु BCM7 मुक्त दूधका उत्पादन और वितरण करनेके लिये सन् २००० ई० में एक निजी कम्पनी स्थापित की। उस कम्पनीका नाम A2 Corporation रखा।

दुनियाके अमीर देशोंने नागरिकोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिये इस विषयमें अनुसन्धान करनेपर जोर दिया। रशिया, जापान, पोलैण्ड, जर्मनीने A1 दूधके दुष्परिणामोंके अध्ययन किये। उनका कहना है कि BCM7 एक चालाक शैतान है, वह जबतक खूनमें नहीं पहुँचता—उससे कोई खतरा नहीं रहता। न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंको खूनमें BCM7 पहचाननेकी जाँच विकसित करनेमें सफलता नहीं मिली थी, लेकिन रशियन वैज्ञानिकोंने गायके खूनमें BCM7 ढूँढ़नेका तरीका विकसित किया और उसका पेटेंट करा लिया। रशियाकी चार अनुसन्धान-संस्थाओंके १२ वैज्ञानिकोंने काम किया। उन्होंने दिखा दिया कि जो शिशु (१ वर्षसे कम आयुवाले) A1 दूध पीते हैं, उनके खून में BCM7 आ जाता है। ११० करोड़ आबादीवाले भारतीयोंके स्वास्थ्यका करीबी सम्बन्ध इस विषयसे है। हम सब इस संकटसे अनजान हैं।

भारतमें विगत ८० से ९० के दशकमें चलाये हुए नस्ल-सुधार अभियानने यूरोपियन गोवंशके वीर्यसे ग्रामीण क्षेत्रमें पशुपालन विभागने करोड़ों A2 (अच्छी) गायोंको A1 (विषैला) बना दिया है और हम जब बाजारमें थैलीमें दूध लेते हैं, वह कई A1 गायोंके दूधका मिश्रण होता है। वही पीकर हम बड़े हुए। अब बार-बार यह कहा जा रहा है कि भारतमें डायबिटीज, दिलकी बीमारियाँ, ऑटोइम्यून रोग बढ़ रहे हैं। भारत इन बीमारियोंकी वैश्विक ‘राजधानी’ हो गया है।

आज देश में A2 दूध (स्वास्थ्यरक्षक) A1 (विषैले) दूधके साथ बेचा जा रहा है। यदि हम A2 दूध स्वतन्त्र रूपसे बेचें, उपलब्ध करायें तो भारतकी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

आनेवाली पीढ़ियाँ जहरीले दूध A1 से बच सकती हैं। यही सोच रखकर न्यूजीलैण्डमें A2 दूधके लिये A2 Corporation की स्थापना की गयी थी।

जब न्यूजीलैण्डके नागरिकोंको A2 दूधकी आवश्यकता महसूस हुई, उन्हें दूध पानेके लिये १० वर्षतक इन्तजार करना पड़ा। उन्हें भारतसे A2 गोवंशका वीर्य या A2 साँड़ मँगवाने पड़े, फिर उनसे भारतीय नस्लकी गायें बनीं और वे A2 दूध देने लगीं, लेकिन हमें यह सब करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे सभी राज्योंमें सैकड़ों गोपालक हैं, जो शुद्ध A2 भारतीय गायोंको सैकड़ोंकी संख्यामें पाल रहे हैं। इसीलिये ऐसा कहना गलत नहीं होगा कि हम खुशनसीब हैं, हमें १० वर्षका इन्तजार आवश्यक नहीं है।

करनालके पशु जेनेटिक अनुसन्धान संस्थानके अध्ययनके नतीजे—भारत सरकारके करनाल-स्थित राष्ट्रीय पशु जेनेटिक अनुसन्धान संस्थानने २००९ ई० में भारतीय गो और भैंस वंशकी जनुकीय (Genetic) जाँच की थी। दोनोंमें A2 जनुक (जीन्स) पाया गया, वे A1 मुक्त पायीं गयीं।

भारतसे वीर्य और A2 साँड़ ले जानेके बाद पर्याप्त मात्रामें A2 दूध मिलनेके लिये १० वर्ष लगेंगे। यह १०

साल भारतके लिये सुहावना अवसर है। हम सिर्फ A2 दूधका निर्यातकर अरबों रुपये कमा सकते हैं। इन दस वर्षोंमें भारतके गोपालक किसान ५० वर्षोंके अँधेरे युगसे उभर सकते हैं। विकसित देश A2 दूधमें स्वयं पूर्ण हों, इसके पहले हम A2 दूधके वैश्विक उत्पादक बन जायँ।

इसके लिये हमें निम्नलिखित नीतियाँ अपनानी होंगी—

१. भारतीय A2 साँड़ोंका निर्यात बन्द करें।

२. भारतीय गोवंशके दूधकी A1, A2 स्थिति जाननेके लिये राज्य सरकारें जिला स्तरपर जेनेटिक जाँचकी प्रयोगशालाएँ स्थापित करें।

३. A2 दूध बेचकर आनेवाली राशिसे A2 दूधके मानवीय स्वास्थ्यपर होनेवाले अच्छे परिणामोंके अनुसन्धानके लिये चिकित्सा महाविद्यालयोंको प्रेरित करें।

ये बातें यदि राज्य सरकारें करती हैं तो वे आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न हो जायँगी। मध्यपूर्वके देश डीजल-पेट्रोलके बलपर सुसम्पन्न हो गये हैं। हमारा गोवंश हमारे लिये भाग्यविधाता हो सकता है। आज पुरानी मूर्तियाँ देशके बाहर ले जाना जैसे प्रतिबन्धित है, वैसे ही भारतके साँड़ और उनका वीर्य ले जानेपर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

[प्रेषक—श्रीरामदयालजी पोद्दार]

संत उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निज स्वरूप ! जब भगवान् हमारे हैं और हमारे भीतर ही हैं तो फिर चिन्ता कैसी ? शोक कैसा ? वे सर्वसमर्थ हैं, उनकी महिमाका वारपार नहीं, तो फिर भय कैसा ? उनकी सत्तासे कोई बाहर नहीं, आँखोंसे कोई ओझल नहीं, तो फिर पश्चात्ताप कैसा ? इन बातोंको अपने जीवनमें उतार लेनेवाले मनुष्यके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रहती ।

यदि भगवान्को ही पसन्द कर लें, तो हममें उनका प्यार पैदा हो जायगा, उनकी याद आने लगेगी और मन भी लग जायगा। यदि हम उन्हींके नाते सब काम करें, तो विस्मृति कभी न होगी।

जाये, इसीका नाम भजन है। यही तो भक्ति है। परहितका भाव हो, सबके साथ सद्भावना हो—यही तो सेवा है। कुछ नहीं चाहना ही तो त्याग है। भगवान्‌के समर्पण हो जाना ही तो प्रेम है। इसीका नाम सच्चा भजन है। अपने स्थानपर ठीक बने रहें, तो सभी धर्मात्मा हैं।

काम छोटा-बड़ा कोई नहीं है। अपने वर्णाश्रमके अनुसार सही बना रहे—यही धर्म है। विचारपूर्वक सबसे असंग रहना ही सच्चा वेदान्त है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भगवान्‌की शरण ग्रहण करना ही वैष्णवता है। इन बातोंके जीवनमें आ जानेपर सभीका कल्याण हो जाता है। केवल कथनसे तथा क्रियामात्रसे कभी किसीका कल्याण नहीं हो

साधनोपयोगी पत्र

(१)

असंतोष और ईर्ष्यासे दुःख

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला था। उत्तर देरसे जा रहा है। क्षमा कीजियेगा।

आपने अपने मनकी जो स्थिति तथा मानस-पीड़ाकी जो बात लिखी, सो ऐसी स्थिति इस समय बहुत लोगों—अच्छे-अच्छे विचारशील तथा सम्पन्न पुरुषोंके मनकी हो रही है। इसका कारण, आपने ठीक लिखा है। वह है—‘अपनी स्थितिमें असंतोष और दूसरोंकी स्थितिमें डाह।’

आप ही बताइये—आपको किस बातकी कमी है? स्त्री है, पुत्र है, मकान है, बड़ा व्यापार है, मान-इज्जत है। फिर भी आप दुखी हैं—इसलिये हैं कि आपके पास जितना जो कुछ है, उससे संतोष नहीं है और दूसरे किसीके पास इससे अधिक है तो वह क्यों है, आपके पास क्यों नहीं—यह डाह है। अतः आप उससे भी अधिक पानेके लिये बेचैन हैं तथा विवेक छोड़कर घुड़दौड़में आगे बढ़ना चाहते हैं। मैं ऐसे सज्जनोंको जानता हूँ, उनमेंसे कई मुझसे बहुत स्नेहका सम्बन्ध रखते हैं, जो सब तरह धन-सम्पत्ति, मान-कीर्ति होनेपर भी असंतोषवश बड़े-बड़े नये व्यापार करने लगे और अब बुरी तरह फँसे कि पहलेकी सम्पत्ति-कीर्ति तो गयी ही, नयी विपत्तियोंसे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो रहा है। उनमेंसे दो-एकको समझाया भी गया था, पर वे उस समय एक ऐसे नशेमें थे कि बात उनकी समझमें आयी ही नहीं और अब पछताते हैं।

प्रकृतिके विस्तारका अन्त नहीं है और प्रकृतिका प्रत्येक पदार्थ, प्रकृतिकी प्रत्येक परिस्थिति अपूर्ण और अनित्य—फलतः परिणाममें दुःखप्रद है। इससे कहीं भी, किसी भी स्थितिपर पहुँच जाइये, कमी मालूम होगी, अभावका अनुभव होगा। उस अभावको मिटाने जाइये—या तो उसके मिटानेके पहले आप मिट जाइयेगा अथवा कदाचित् वह मिटा तो दूसरा उससे भी बड़ा अभाव तुरंत

उपस्थित हो जायगा, जो आपको नये दुःखोंमें डाल देगा।

अतः बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वह इस क्षेत्रमें संतोष करे। महर्षि पतंजलिने अनुभूत सत्य बतलाया है—

‘संतोषादनुत्तमसुखलाभः।’ (योगदर्शन २।४२)

‘संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है।’

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भक्तके लक्षण बतलाते हुए एक ही प्रसंगमें दो बार संतोषकी चर्चा की है—

‘संतुष्टः सततम्’ (१२।१४)

‘संतुष्टो येन केनचित्।’ (१२।१९)

‘निरन्तर प्रत्येक परिस्थितिमें सन्तुष्ट’ और जिस किसी प्रकारसे रहना पड़े, उसीमें सन्तुष्ट रहे। इसका अभिप्राय यह है कि संसारकी भोगदृष्टिसे दुःख, अभाव, प्रतिकूलता, विपत्ति आदि हों तो उनमें भी सन्तुष्ट रहे।

पद्मपुराणमें कहा गया है—

सर्वत्र सम्पदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्।

उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।

कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतस्य धावताम्॥

असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम्।

सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत्॥

(सृष्टिखण्ड अ० १९)

‘जिसका मन सन्तुष्ट है, उसके लिये सर्वत्र सुख-सम्पत्ति भरी है, कहीं भी दुःख-विपत्ति नहीं है; वह हर हालतमें सुखी है; वैसे ही, जैसे जिसके पैर जूतेसे ढके हैं, उसके लिये मानो सारी पृथ्वी चमड़ेसे ढकी है। संतोषरूपी अमृतसे तृप्त और शान्तचित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़-धूप करनेवालोंको कहाँ मिल सकता है? सबसे बड़ा दुःख है—‘असंतोष’ और सबसे बड़ा सुख है—‘संतोष’। अतएव जिनको सुख चाहिये, उन्हें प्रत्येक परिस्थितिमें निरन्तर सन्तुष्ट रहना चाहिये।’

इन सब बातोंपर तथा शास्त्रवचनोंपर ध्यान दीजिये। आप तो संसारकी दृष्टिसे सब प्रकारसे सुखी और

सम्पन्न हैं। आपका यह दुःख बेसमझीसे असंतोष और ईर्ष्या—दूसरोंके उत्कर्षको न सह सकनेकी दूषित वृत्तिने बुलाया हुआ है। आप इन करोड़ों-करोड़ों अपने ही सरीखे शरीर-मनवाले स्त्री-पुरुषोंकी स्थितिको देखिये, जो भाँति-भाँतिसे अभावग्रस्त हैं, विपन्न हैं, पूरा खाने-पहननेको नहीं पा रहे हैं। उनकी ओर दयार्द्रहृदयसे देखकर अपनी स्थितिके लिये भगवान्‌के कृतज्ञ बनिये और भगवान्‌की दी हुई इस स्थितिसे यथायोग्य यथासाध्य उन अभावग्रस्तोंकी सेवा कीजिये। संतोष, मुदिता और करुणावृत्ति मनमें आयी कि आप सुखी हो जायँगे। अपनी स्थितिपर संतोष करना, दूसरोंके उत्कर्षको देखकर मुदित होना और दुःखियोंको देखकर करुणापूर्ण हो जाना—मानवका परम कर्तव्य है और यह दुःखनाशका सर्वोत्तम उपाय है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

मनको सद्भाव—सद्गुणोंसे पूर्ण रखिये!

आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि बहुत बार अपने ही मनके भावोंकी प्रतिमूर्ति बाहर दूसरोंमें दिखायी देती है। जिसके मनमें असत्य, काम, क्रोध, लोभ, मद, द्वेष, वैर, ईर्ष्या, हिंसा, प्रतिहिंसा, घृणा आदि दुर्भाव और दोष भरे रहते हैं, उसे जगत्‌के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिक रूपसे ये दोष ही दिखायी देते हैं। जितने दोष दीखते हैं, उतनी ही उनके प्रति द्वेष, घृणाकी वृत्तियाँ बनती तथा बढ़ती हैं। इसके विपरीत जिनके मनमें सत्य, त्याग, क्षमा, संतोष, विनय, मुदिता, प्रेम, सेवा, करुणा, सहानुभूति, सौहार्द, शील, परदुःखकातरता, वात्सल्य आदि सद्भाव और सद्गुण रहते हैं, उन्हें जगत्‌के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिक रूपमें ये सद्गुण ही दिखायी देते हैं। फलतः सबके प्रति उनका आत्मीयभाव, सौहार्द, सेवा-तत्परता आदि बढ़ते रहते हैं, जिससे परस्पर सुख-समृद्धि तथा त्याग-प्रेमकी वृद्धि होती है। अतएव आप अपने मनसे दुर्भावों, दुर्विचारों और दोषोंको निकालकर उनकी जगह सद्भाव, सद्बिचार और सद्गुणोंको भरिये और उनको बढ़ाइये। जिसके जैसे मानस—भाव

होते हैं, उसको वैसे ही वातावरण, संग तथा व्यक्ति मिलते हैं, जिससे उन भावोंकी सतत वृद्धि होती है।

किसीके सम्बन्धमें मनमें कुविचार कभी मत कीजिये कि 'यह हमारा शत्रु ही है। इसके विचार कभी प्रेमके हो ही नहीं सकते। यह कभी सद्बिचार, सद्व्यवहार कर ही नहीं सकता; इसमें दुर्गुण-ही-दुर्गुण भरे हैं और ये दुर्गुण ही सदा वर्तमान रहेंगे; कभी भी इसमें सद्गुण आ ही नहीं सकते। यह कभी उठ ही नहीं सकता, गिरता ही रहेगा। इसका भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा; इसको सद्बुद्धि कभी आयेगी ही नहीं और इसका सद्भाग्य कभी प्रकट होगा ही नहीं।'।

प्रथम तो यह बात है कि किसीके सम्बन्धमें आपका सोचना सर्वदा गलत या न्यूनाधिक रूपसे गलत हो सकता है। किसी भी कारणवश जिसके प्रति आपकी द्वेषबुद्धि हो जाती है, उसके लिये आपकी आँख ही बदल जाती है। आप मिथ्या नहीं बोलते, पर आपकी बदली हुई आँखें—जैसे हरा चश्मा लगा लेनेपर सब कुछ हरा ही दीखता है, वैसे ही—उसमें गुण न देखकर दोष ही देखती हैं। दूसरे किसीको अवगुणोंकी खान मानना और उसके सद्गुणसम्पन्न बननेमें अविश्वास करना—सर्वसमर्थ सर्वसुहृद् भगवान्‌की कृपा तथा शक्तिपर सन्देह करना है। भगवान्‌ क्षणभरमें क्या-से-क्या कर सकते हैं—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।

'प्रभु चाहें तो मच्छरको ब्रह्मा बना सकते हैं और ब्रह्माको मच्छर बना दे सकते हैं।' उनकी शक्ति तथा कृपापर विश्वास कीजिये और यदि किसीमें दोष-दुर्गुण दिखायी दें तो प्रभुसे प्रार्थना कीजिये कि वे अपनी सहज कृपासे उसके दोष-दुर्गुणोंका नाश करके उसे सर्वथा निर्दोष एवं सद्गुण-सम्पन्न बना दें और ऐसी कृपा करें, जिससे आपको सभीमें भगवान्‌ तथा भगवान्‌के सभी दिव्य गुण ही दिखायी दें। यही संतकी आँख है, जो भगवत्कृपासे प्राप्त होती है और इसी स्थितिको मानवताका विकास कह सकते हैं। शेष भगवत्कृपा।

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।५० बजेतक	शनि	मघा रात्रिमें ३।४९ बजेतक	१५ अगस्त	स्वतन्त्रता-दिवस, मूल रात्रिमें ३।४९ बजेतक।
द्वितीया " १०।३७ बजेतक	रवि	पू० फा० अहोरात्र	१६ "	धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री-जयन्ती।
तृतीया " १२।३८ बजेतक	सोम	पू० फा० प्रातः ६।१७ बजेतक	१७ "	कन्याराशि दिनमें १२।५६ बजेसे, श्रावण सोमवारव्रत, सिंह-संक्रान्ति रात्रिमें २।१९ बजे, मघाका सूर्य रात्रिमें २।१९ बजे।
चतुर्थी " २।४० बजेतक	मंगल	उ० फा० दिनमें ८।५३ बजेतक	१८ "	भद्रा दिनमें १।३९ बजेसे रात्रिमें २।४० बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी रात्रिशेष ४।३४ बजेतक	बुध	हस्त " ११।२९ बजेतक	१९ "	तुलाराशि रात्रिमें १२।४१ बजेसे, नागपंचमी।
षष्ठी अहोरात्र	गुरु	चित्रा " १।५४ बजेतक	२० "	कलकी अवतार, शुक्रोदय पूर्वमें दिनमें ८।४७ बजे।
षष्ठी प्रातः ६।१२ बजेतक	शुक्र	स्वाती " ४।० बजेतक	२१ "	x x x
सप्तमी दिनमें ७।२६ बजेतक	शनि	विशाखा सायं ५।४० बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें ७।२६ बजेसे रात्रिमें ७।४९ बजेतक, वृश्चिकराशि दिनमें ११।१५ बजेसे, गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती।
अष्टमी " ८।१४ बजेतक	रवि	अनुराधा रात्रिमें ६।५४ बजेतक	२३ "	मूल सायं ६।५४ बजेसे।
नवमी " ८।२८ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " ७।३६ बजेतक	२४ "	धनुराशि रात्रिमें ७।३६ बजेसे, श्रावण सोमवारव्रत, सायन कन्याका सूर्य प्रातः ६।५० बजे।
दशमी " ८।१३ बजेतक	मंगल	मूल " ७।४९ बजेतक	२५ "	भद्रा रात्रिमें ७।५० बजेसे, मूल रात्रिमें ७।४९ बजेतक।
एकादशी " ७।२९ बजेतक	बुध	पू० षा० " ७।३४ बजेतक	२६ "	भद्रा दिनमें ७।२९ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें १।२४ बजेसे, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी प्रातः ६।११ बजेतक	गुरु	उ० षा० " ६।५३ बजेतक	२७ "	प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी रात्रिशेष ४।४२ बजेतक				
चतुर्दशी रात्रिमें २।४८ बजेतक	शुक्र	श्रवण सायं ५।५३ बजेतक	२८ "	भद्रा रात्रिमें २।४८ बजेसे, कुम्भराशि रात्रिशेष ५।१४ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिशेष ५।१४ बजे।
पूर्णिमा " १२।३९ बजेतक	शनि	धनिष्ठा दिनमें ४।३६ बजेतक	२९ "	भद्रा दिनमें १।४४ बजेतक, पूर्णिमा, रक्षाबन्धन दिनमें १।४४ के बाद।

कृपानुभूति
'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने अपने भक्तोंको यह आश्वासन दिया है कि उनके योगक्षेमकी व्यवस्था मैं स्वयं करता हूँ। इस सन्दर्भमें दो घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(१)

स्वामी विवेकानन्दजीके जीवनकी एक घटना है। तब वे जगत्-प्रसिद्ध नहीं हुए थे और उनका जीवन भौतिक अभावोंसे गुजर रहा था। अमेरिका-यात्रासे पूर्व उन्होंने सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया। एक बार वे रेलसे यात्रा कर रहे थे, उन्हें बड़ी जोरसे भूख-प्यास लग रही थी, किंतु उनके पास कुछ नहीं था। वे चुपचाप बैठे थे। उनके सामनेकी सीटपर एक सेठजी सपरिवार यात्रा कर रहे थे, उनके पास सब साधन थे, वे खाते-पीते यात्रा कर रहे थे। वे स्वामीजीकी पूरी यात्रामें हँसी उड़ाते रहे कि कैसा हट्टा-कट्टा संन्यासी है, निठल्ला है; कुछ काम नहीं करता, फोकटका खाता है। एक हम हैं, खूब मेहनत करते हैं और ठाटसे रहते हैं। स्वामीजीने उसकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया, चुप बैठे रहे।

गन्तव्य स्टेशन आया, सेठजी और स्वामीजी एक साथ उतरे और स्टेशनपर एक पेड़के नीचे सीटपर बैठ गये; किंतु सेठजीका उपहासका क्रम नहीं टूटा। तभी एक हलवाई आया। उसने स्वामीजीको प्रणाम किया, साथ लाये आसनपर बैठाया और गरम-गरम भोजन परोसने लगा तथा एक गिलास पानी रखा। विवेकानन्दजीने सकुचाकर कहा—‘भाई! तुम्हें गलतफहमी हुई है, तुम जिसके लिये कर रहे हो, वह मैं नहीं हूँ। मेरा यहाँ कोई परिचित नहीं, मैं तो एक संन्यासी हूँ।’ हलवाई बोला—महाराज! मैं तो अपनी दुकानपर बैठा ऊँघ रहा था। तभी मुझे नौद लग गयी। सपनेमें भगवान् राम आये और कहा—‘तू यहाँ बैठा-बैठा ऊँघ रहा है, वहाँ स्टेशनपर मेरा भक्त भूखा-प्यासा बैठा है। जल्दी उठ, पूड़ी-सब्जी बना और ठण्डा पानी ले जाना मत भूलना, उसे बहुत प्यास लगी है।’ मैं चौंककर जगा, किंतु भ्रम समझकर फिर सो गया। भगवान् राम फिर सपनेमें आये और डाँटकर कहा—‘सुनता नहीं है, फिर सो गया, चल उठ, मैंने जैसा कहा है, वैसा कर।’ उन्होंने सपनेमें आपका स्वरूप भी दिखाया। अब

बस, मैं फटाफट उठा, पूड़ी-सब्जी बनायी और दौड़ता आया हूँ। आप वही हैं, जैसा मैंने सपनेमें देखा था। सेठजीने यह सब सुना, देखा और उन्हें अपने कृत्यपर ग्लानि हुई और उन्होंने स्वामीजीके चरण पकड़कर माफी माँगी।

(२)

मेरे जीवनकी एक घटना है। बात सन् १९७४ ई० की है। मेरी नौकरी अजमेर शहरमें लगी और मेरा मित्र सिंचाई विभाग भीलवाड़में ओवरसियर हो गया। वह कभी डाकबँगलेमें रह जाता, कभी किरायेके मकानमें रात गुजार देता। हम दोनों अविवाहित थे। एक दिन हमारा कार्यक्रम बना धनोपमाता (भीलवाड़ा) -के दर्शन करनेका। उसने कहा कि तुम डाकबँगले आ जाना। मैं निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार सुबह नहा-धोकर बसमें बैठकर डाकबँगलेवाली रोडपर उतर गया। उस दिन बहुत तेज बारिश हुई थी और डाकबँगलेकी कच्ची रोडपर कीचड़ हो गया। अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि उधरसे डाकबँगलेका चपरासी आता दिखायी दिया। उसने मुझे बताया कि साहब तो बरसातके कारण रातको ही किरायेके मकानपर सोने चले गये थे। अब मैं क्या करता, मेरी तो हालत खराब थी। भूख-प्याससे मैं व्याकुल था। पैसे तो मेरे पास थे, पर सड़क सूनी थी; मैं पैदल ही आगेकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें एक गाँव आया; मैंने एक ग्रामीणसे पूछा—‘यहाँ कहीं चाय-नमकीन मिल जायगी क्या?’ उसने एक मकानकी तरफ इशारा कर दिया। मैंने उस मकानपर जाकर चायके लिये प्रार्थना की; क्योंकि मेरे लिये वह अनजान जगह थी।

मुझे आश्चर्य हुआ जब मकानमालिक एक काँसेकी थालीमें रोटी और कटोरीमें चनेकी दाल लेकर आये। मैं बोला—‘भाई! मैंने तो चाय माँगी थी।’ वे बोले—‘बाबूजी! आप संकोच न करें—मुझे मालूम है आप भूखे हैं।’ मैं उसके प्रेमभरे आग्रहको टाल न सका; वैसे भी मुझे बहुत भूख लग रही थी। वह भोजन मुझे अमृत-समान लगा। फिर मेरी मित्रसे मुलाकात हो गयी एवं माताका दर्शन भी हो गया।

इन घटनाओंसे सिद्ध होता है कि परमपिता

पढ़ो, समझो और करो

(१)

साथी हाथ बढ़ाना

पूना और मुम्बईमें अधिक अन्तर नहीं है। अन्तर इतना ही है कि पूना है शान्त और स्वस्थ, जबकि मुम्बई अलमस्त और अस्वस्थ। तूफानमें चक्कर काटते हुए पत्तेकी भाँति लोग वहाँ दौड़ते रहते हैं। लोकल ट्रेनें मुम्बईकी प्राण ही हैं। लोग जब 'आठ बत्तीसवाली पकड़नी है,' 'पाँच-पच्चीसवाली लगती है, चली गयी।' 'साढ़े सातवालीकी आज आशा नहीं है'—ऐसा बोलते हैं, तब कितना अजीब लगता है!

छुट्टियोंमें मुम्बई गया था। दादर स्टेशनपर बैठा था। कहीं जानेकी शीघ्रता नहीं थी, इसलिये निश्चिन्तताके साथ घड़ीकी सुइयोंकी तरह दौड़ती हुई भीड़को देखनेका आनन्द ले रहा था। पूनामें यह सब कहाँ देखनेको मिलता है।

'साब! पोलिश'—मेरे रंगमें भंग हुआ।

मैंने मना किया, परंतु फिर न जाने क्या सोचकर 'चमक बढ़ाओ' वाली बात कहकर अपना जूता आगे बढ़ा दिया। पालिशवालेने अपने साधन नीचे रखे और मैं भी पालिश करनेवाले स्टैण्डके पास ही स्थितप्रज्ञ की तरह खड़ा हो गया।

उसने काम प्रारम्भ तो किया, परंतु उसमें मजा नहीं आ रहा था। मुम्बईवालोंकी स्फूर्ति उसमें नहीं थी। जब अधिक देर खड़ा रहना सहन-शक्तिके बाहर हो गया, तब मुँहसे निकल गया—'अरे भाई! कैसे ठण्डे दिमागसे काम करते हो। कुछ शीघ्रता करो।' वह मौन रहा। मुझे उसका मौन रहना अच्छा नहीं लगा, परंतु किया क्या जाय? इतनेमें दूसरा पालिशवाला वहाँ आ गया। उसने इसको तुरंत अलग कर दिया और स्वयं काममें जुट गया। काम एकदम फटाफट। पहलेवाला गूँगेकी तरह एक ओर खड़ा रहा। मुझे ऐसा लगा कि यह अभी नया-ही-नया है। इसलिये ये मुम्बईके उस्ताद पालिशवाले उसे अपने ढंगसे परेशान करते हैं।

पैसे किसे देने हैं, इसपर विचार करते हुए मैंने जेबमें हाथ डाला। मुझे लगा कि अभी इन दोनोंमें पैसोंके लिये झगड़ा या मारपीट होगी। 'समर्थहीका सब कुछ' इस सिद्धान्तके अनुसार मैंने बादमें आनेवाले पालिशवालेको पैसे दिये। उसने पैसे ले तो लिये, परंतु तुरंत ही पहलेवालेको दे दिये। प्रेमसे पीठ थपथपायी और हाथ मिलाकर चल दिया। अब मैं थोड़ा स्वस्थ हुआ। मैंने उसको तुरंत वापस बुलाया और सीधा प्रश्न किया—'यह क्या चक्कर है?'

'साब, ये किशन तीन महीने पूर्व चलती लोकल ट्रेनसे बाहर गिर गया था। बहुत चोट आयी। पैरमें १८ से २० टाँके आये और हाथमें भी बहुत चोट आयी। बेचारा बच ही गया; नहीं तो वृद्धा माँ और पाँच बहनोंका क्या होता—इधर-उधर भटकती फिरतीं।'

अब किशन पहलेकी भाँति स्फूर्तिसे काम नहीं कर सकेगा, यह सोचकर स्टेशनपर रहनेवाले हम सब साथियोंने तय किया कि प्रत्येक अपने एक जोड़ी जूतेकी आय नित्य किशनको दिया करेंगे और अवसर पड़नेपर उसके काममें सहायता भी करेंगे। दूसरे पालिश करनेवालेकी बात सुनकर मैं तो चकित ही रह गया।

किशन तथा उसके साथी स्टेशनपर आने-जानेवाले सब यात्रियोंको मानो सन्देश दे रहे हों—'साथी हाथ बढ़ाना।'

इस बातको कितना समय हुआ, स्मरण नहीं, परंतु जब भी मैं मुम्बई या विशेषकर दादर स्टेशनपर जाता हूँ, तब किशन और उसके साथी स्मरण हो ही आते हैं। दादर स्टेशनकी अपार भीड़में भी मेरी आँखें किशनको ढूँढ़ती रहती हैं। (अखण्ड-आनन्द)

—विजय रतिलाल पीर

(२)

आदर्श शिक्षक

यह घटना लगभग छह-सात वर्ष पूर्वकी है। मुझे

यह घटना ३ जून, सन् २०१४ ई० की है, मैं कुम्भराज जिला गुना (म०प्र०)-का निवासी हूँ। मेरी पोती गोपिका कासट एक सर्विसके लिये इण्टरव्यू देने देहली गयी थी। लौटते समय ग्वालियरसे बसद्वारा गुना आना था। उसने रात्रि बससे ग्वालियरसे गुनाके लिये प्रस्थान किया। उसके पास एक बैग था, जिसमें सर्विससे

—श्यामबिहारी कासट

मनन करने योग्य

गुण और योग्यता

एक थे सेठजी, उनके तीन पुत्र थे। उन्होंने एक दिन अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा—‘अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन जाने अब कितने दिन जी पाऊँगा। परंतु तुमलोगोंसे एक बात पूछनेकी इच्छा है। बोलो, तुमलोग मुझे कितना चाहते हो?’

सबसे बड़े पुत्रने कहा—‘पिताजी! आपके प्रति मेरा प्रेम समुद्रकी तरह अथाह है। मैं आपको बहुत चाहता हूँ।’

मझले पुत्रने कहा—‘पिताजी! आपके प्रति प्रेमकी तुलना मैं किसी दूसरेसे नहीं कर सकता।’

सबसे छोटेने कहा—‘पिताजी! मैं तो इतना जानता हूँ कि आप मेरे पिता हैं और पिता-पुत्र दोनों एक-दूसरेको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं।’

तीनों पुत्रोंकी बात सुनकर सेठजी चुप रहे।

कुछ दिनोंके बाद सेठजीने अपने मुनीमको बुलाकर कहा—‘मुनीमजी! अब मैं वृद्ध हो गया। मेरी इच्छा है कि अब मैं तीर्थयात्रा कर लूँ और मैं कल ही यात्रापर जानेवाला हूँ। मेरी अनुपस्थितिमें गद्दीका काम-काज ठीकसे चले, इसका ध्यान रखियेगा। सेठजी दूसरे ही दिन तीर्थयात्रापर निकल पड़े।’

दो-एक महीने बाद समाचार मिला कि सेठजीका रास्तेमें ही स्वर्गवास हो गया। यह समाचार सुनकर पूरा परिवार शोकमें डूब गया।

सेठजीका सारा व्यापार अब लड़कोंके हाथमें आ गया था, परंतु सेठजीके इच्छानुसार मुनीमजी गद्दीकी तथा काम-काजकी देख-रेख रखते थे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया।

एक दिन एक वृद्ध संन्यासी सेठजीके घरके दरवाजेपर आ खड़े हुए। उन्होंने देखा कि एक युवक साधारण अवस्थामें उदास-सा कुछ दूर बैठा है। संन्यासीने उसके पास जाकर पूछा—‘बेटा! तुम इस तरह उदास क्यों बैठे हो?’

उसने बताया—‘महात्माजी! मेरे पिताजी एक वर्ष पहले तीर्थयात्रापर गये थे। रास्तेमें ही उनका स्वर्गवास हो गया। उन्हींके वियोगसे मैं उदास रहने लगा हूँ। मैं उन्हें भूल नहीं सकता।’ और इतना कहनेके बाद उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

उस संन्यासीने पूछा—‘तुम्हारे दूसरे भाई हैं?’

जी हाँ, हम तीन भाई हैं। मझला तो पिताजीके स्वर्गवास होनेके बाद मौज-मस्तीमें खो गया है। पिताजीकी सम्पत्ति उड़ा-खा रहा है। मैं तीनोंमें ज्येष्ठ हूँ, परंतु स्वस्थ न रहनेके कारण सारा काम-काज मेरा सबसे छोटा भाई ही देखता है। वह व्यापारकी देख-रेख परिश्रम और ईमानदारीसे करता है, परंतु मझला उसके कार्यमें प्रायः बाधा डालता है, इस कारण हम दोनोंको उसीकी चिन्ता रहती है।

संन्यासी वहाँसे उठकर सीधे सेठजीकी गद्दीपर पहुँचे।

सेठजीकी कुर्सीपर बैठे एक तेजस्वी युवकने विनम्रतासे संन्यासीकी ओर देखकर पूछा—‘महात्माजी! आपकी हम क्या सेवा करें?’

उसके इतना कहते ही संन्यासी उसके पास जाकर एकदम उससे लिपट गये और बोले—‘बेटा! तुमने मेरी इच्छा पूरी की है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम तीनों भाइयोंके गुण और योग्यताकी परखके लिये ही मैंने झूठा समाचार भिजवाया था और एक वर्षतक हरिद्वारमें रहा। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम ही मुझे अधिक चाहते हो। तुम्हारेमें वे गुण और योग्यताएँ हैं, जो एक श्रेष्ठ पुत्रमें होना चाहिये। परंतु बेटा! अपने बड़े और मझले भाइयोंका भी ध्यान रखना और उन्हें भी अपने-जैसा बनानेकी चेष्टा करना। मैं तो अब वापस हरिद्वार जा रहा हूँ।’

पुत्रके बहुत समझानेपर भी पिताने घर-गृहस्थीका मोह छोड़ दिया और वे हरिद्वारमें जाकर भगवद्भजन-परायण हो गये।

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें अब उपलब्ध

साधन-सुधा-सिन्धु—कोड 465 (ग्रन्थाकार)—यह ग्रन्थ गीताप्रेससे प्रकाशित ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत लगभग ५० पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। इसमें परमात्मप्राप्तिके अनेक सुगम उपायोंका सरल भाषामें अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक देश, वेष, भाषा एवं सम्प्रदायके साधकोंके लिये साधनकी उपयोगी एवं मार्गदर्शक सामग्रीसे युक्त है। पृष्ठ-संख्या १००८, कपड़ेकी मजबूत जिल्द एवं सुन्दर रंगीन, लेमिनेटेड आवरणसहित। मूल्य ₹ १७०, (कोड 1630) गुजराती और (कोड 1473) ओड़िआमें भी उपलब्ध।

नारी-अङ्क (कोड 43) ग्रन्थाकार—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी ग्रन्थ है। मूल्य ₹ २४०

देवीपुराण [महाभागवत] (कोड 1610) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें मुख्य रूपसे भगवती महाशक्तिके माहात्म्य एवं उनके विभिन्न चरित्रोंका विस्तृत वर्णन है। इसमें मूल प्रकृति भगवतीके गङ्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, तुलसी आदि रूपोंमें विवर्तित होनेके मनोरम आख्यान, उपासना आदिका सुन्दर विवेचन है। मूल्य ₹ १२०

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड (मूल) गुटका (कोड 78) मूल्य ₹ २५ (कोड 1953) पुस्तकाकार मूल्य ₹ ४० भी उपलब्ध।

श्रीरामचरितमानस (कोड 1463) ओड़िआ—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत श्रीरामचरितमानस हिन्दी-साहित्यकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करनेसे एवं इसके उपदेशोंके अनुरूप आचरण करनेसे मानवमात्रके कल्याणके साथ भगवत्प्रेमकी सहज ही प्राप्ति सम्भव है। मूल्य ₹ २५०

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

श्रीविष्णुपुराण (कोड 2006) गुजराती—श्रीपराशर ऋषि-प्रणीत यह पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके प्रतिपाद्य भगवान् विष्णु हैं, जो सृष्टिके आदिकारण, नित्य, अक्षय, अव्यय तथा एकरस हैं। इसमें आकाश आदि भूतोंका परिमाण, समुद्र, सूर्य आदिका परिमाण, पर्वत, देवतादिकी उत्पत्ति, मन्वन्तर, कल्प-विभाग, सम्पूर्ण धर्म एवं देवर्षि तथा राजर्षियोंके चरित्रका विशद वर्णन है। मूल्य ₹ १५०

श्रीमद्भागवतमहापुराण वचनमु (कोड 2007) तेलुगु—यह ग्रन्थ भगवान् व्यासकी उत्कृष्ट रचना श्रीमद्भागवतका तेलुगु वर्णान्तरण और अनुवाद है। तेलुगु भाषा-भाषी पाठकोंके कल्याणार्थ इसका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹ २८०

बृहदाकार साइजमें उपलब्ध ग्रन्थ

1907	श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण—केवल हिन्दी	४५०	1	गीता-तत्त्व-विवेचनी—हिन्दी-टीका	२५०
1389	श्रीरामचरितमानस—टीकासहित, वि० सं०	६००	5	गीता-साधक-संजीवनी—हिन्दी-टीका	४५०
1436	श्रीरामचरितमानस—केवल मूल	२५०	25	श्रीशुकसुधासागर—केवल हिन्दी	५००
80	श्रीरामचरितमानस—टीकासहित	५००	व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—273005		

मासिक 'कल्याण' kalyan-gitapress.org पर मुफ्त पढ़ें।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

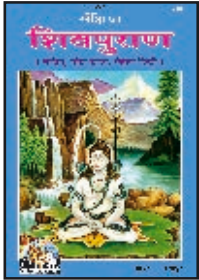
Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

श्रावणमास १ अगस्त दिन शनिवारसे प्रारम्भ हो रहा है।



संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 789, ग्रन्थाकार, सजिल्द—

इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹ २००, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹ ४० अतिरिक्त। (कोड 1468) विशिष्ट सं० मूल्य ₹ २५०, (कोड 2020)

मूल, मोटा टाइप, मूल्य ₹ २५०, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹ ४५ अतिरिक्त। (कोड 1286) गुजराती, (कोड 975) तेलुगु, (कोड 1937) बँगला, (कोड 1926) कन्नड़ भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1985	लिङ्गमहापुराण—सटीक	२००	204	ॐ नमः शिवाय-चित्रकथा	२५	228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	३
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	३५	1343	हर हर महादेव	२५	1185	शिवचालीसा-लघु (बँगला भी)	२
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	३०	1954	शिव-स्मरण	१०	1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	८
1899	श्रावणमास-माहात्म्य	३२	1367	श्रीसत्यनारायणव्रतकथा	१२	230	अमोघ शिवकवच	३
1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०	563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	५	1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	३०

श्रीमद्भागवतमहापुराण

श्रीमद्भागवतमहापुराण—बेड़िया, सटीक, सजिल्द, मोटा टाइप—श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीकको पत्राकारकी तरह बेड़िया ग्रन्थाकार, मोटा टाइपमें प्रकाशित किया गया है, जिससे भागवतका पाठ करनेवालोंको सुविधा होगी एवं व्यास-पीठपर भी इसको प्रतिस्थापित किया जा सकता है। (कोड 1951-1952) दो खण्डोंमें सेट। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ ८००

श्रीमद्भागवतके अन्य संस्करण

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 26-27) सटीक दो खण्डोंमें सामान्य संस्करण। (ओड़िआ, बँगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, अंग्रेजी)

श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1930) ग्रन्थाकार—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, (गुजराती, मराठी, तेलुगु, कन्नड़ भी)

श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1945) ग्रन्थाकार, विशिष्ट संस्करण

श्रीशुक-सुधासागर (कोड 25) बृहदाकार—भाषानुवाद।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 29)—मूल, मोटा टाइप (तेलुगु भी)

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 124)—मझला मूल।
,, विशिष्ट संस्करण (कोड 1855)—,, मूल,
भागवतस्तुतिसंग्रह (कोड 1092)

श्रीप्रेमसुधासागर (कोड 30)—(ओड़िआ भी)

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध (कोड 31)

जीवन-संजीवनी (कोड 1927)—श्रीमद्भागवतके सफल व्यावहारिक जीवन-सूत्र।